अभिनव कृषि

वर्ष-6 अंक-4 दिसम्बर, 2024 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

● जैविक खेती ● मधुमक्खी पालन ● मशरूम उत्पादन ● एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन ● सिंचाई प्रबंधन ● मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
(प्रसार शिक्षा निदेशालय)
कृषि तकनीकी प्रदर्शनी
दिनाँक : 13 दिसम्बर, 2024
स्थान : महाराव उम्मेदसिंह स्टेडियम, नयापुरा, कोटा
कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सोया पनीर प्रसंस्करण विधि
कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा
100 कि.ग्राम सोयाबिन का पूरा दाना
6 घंटे पानी से भिगोना
पानी से सफाई
दूध को छानना
भव्या सोया पनीर
शिवपुरा, कोटा

अभिनव कृषि

वर्ष-6 अंक-4 दिसम्बर, 2024 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
माननीय कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. घनश्याम मीना
सह आचार्य (पशुपालन विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. डी.एल. यादव
सहा. आचार्य (पादप रोग विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. अरविन्द नागर
विषय विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. रूप सिंह
विषय विशेषज्ञ (पौध सरंक्षण)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.एस.के. जैन
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आशुतोष मिश्रा
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. वीरेन्द्र सिंह
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एन.एल. मीणा
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, हिण्डौली

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड ई.

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक, मानव संसाधन विकास

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

भारतीय कृषि का परिदृश्य बदल रहा है। कृषि में बदलाव ने किसान की दिशा और दशा दोनों में नये युग की शुरूआत कर दी है। डिजिटल और स्मार्ट कृषि की तरफ कृषकों का रूझान बढा है परिणाम स्वरूप कृषि की तरफ युवाओं का झुकाव भी देखा जा रहा है। कृषि का व्यवसायीकरण होने के कारण इसमें युवाओं को रोजगार के बेहतर अवसर परिलक्षित हो रहे है।

डिजिटल व स्मार्ट कृषि, कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक सभी घटको हेतु एक नई दिशा का निर्धारण कर रही है। इस दिशा में प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्विवद्यालय, कोटा द्वारा फसल उत्पादन, पशुपालन एवं सम्बन्धित कृषि क्षेत्र की उन्नत कृषि तकनीकों को कृषक समुदाय तक पहुंचाकर की आय बढाने का प्रयास किये जा रहे है।

अभिनव कृषि पत्रिका का मुख्य उद्देश्य सहज व सरल भाषा में कृषि विषय पर तकनीकी जानकारी किसानों को उपलब्ध कराना है जिससे किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकें।

पत्रिका के इस संस्करण में पर्यावरण संरक्षित खेती, जैविक खेती, रबी फसलों में तरल उर्वरक, पर्णीय सूक्ष्म तत्व प्रबंधन एवं जल प्रबंधन, लो टनल तकनीक द्वारा ऑफ सीजन सब्जियों की खेती, सहजन की खेती, मधुमक्खी पालन, इत्यादि की जानकारी उपलब्ध करवायी गई है, जो हितधारकों को लाभकारी सिद्ध हो सकेगी।

मैं, इस पत्रिका के सम्पादक मण्डल को संकलन एवं संपादन करने की सराहना करता हूँ एवं शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(प्रताप सिंह)

अभिनव कृषि

वर्ष-6 अंक-4 दिसम्बर, 2024

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	पर्यावरण संरक्षित खेती कृष्ण मुरारी शर्मा एवं अभय कुमार व्यास	1–4
2.	जैविक खेती: प्राकृतिक खेती का एक नया आयाम पूनम फौजदार, खजान सिंह, पी. के. पी. मीना एवं नीरज कुमार	5–9
3.	रबी फसलों में पर्णीय सूक्ष्म तत्व एवं अजैविक कारक प्रबंन्धन उदिती धाकड़, शालिनी मीणा, सत्यनारायण रेगर एवं एस. एन. मीणा	10–11
4.	फसल उत्पादन में तरल उर्वरकों का महत्व सत्यनारायण रेगर, उदिती धाकड, एस, एन, मीणा एवं प्रताप सिंह	12–13
5.	रबी फसलों में जल उत्पादकता वृद्धि के विभिन्न आयाम आर.एस. नारोलिया, राजेन्द्र कुमार यादव एवं किरण मीणा	14–15
6.	लो टनल कृषि द्वारा ऑफ सीजन में सब्जियों की खेती से आय वृद्धि खजान सिंह, पूनम फौजदार, राकेश यादव एवं मंजू मीणा	16–17
7.	सब्जी उत्पादन और पोषण में सूक्ष्म जीवों की भूमिका रोनक कूड़ी, नरेश कुमार, संतोष चौधरी एवं महेश कुमार पूनिया	18–19
8.	अनार की फसल में जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट) रोग : कारण, लक्षण और प्रबंधन के आधुनिक तरीके मोनू कुमारी, आयुषी जैन, विशा जैन एवं हर्षित कुमार	20–21
9.	मसालों की खेती में प्रमुख चुनौतियाँ एवं रोकथाम संबंधी उपाय आयुषी जैन, मोनू कुमारी, सुनील एवं विशा जैन	22
10.	चिरौंजी एक पौष्टिक भोजन विकल्प रूपा उज्ज्वल	23
11.	नागौरी पान मेथी (कसूरी मेथी) का महत्व रोनक कूड़ी, नरेश कुमार, संतोष चौधरी एवं महेश कुमार पूनिया	24
12.	बायोगैस का उत्पादन: सूक्ष्मजीव आशा कुमारी, विकास शर्मा एवं ए. के. शर्मा	25
13.	मशरुम के पोषक तत्व सरिता एवं गुजंन सनाढ्य	26
14.	मृदा परीक्षण का कृषि में महत्व अशोक कुमार सामोता, पी.सी. चपलोत एवं लालचन्द कुमावत	27
15.	कृषि प्रदूषण के निवारण में प्राकृतिक सूक्ष्मजीवों की भूमिका आशा कुमारी, विकास शर्मा एवं ए. के. शर्मा	28
16.	शुष्क क्षेत्रों में सहजन: हरित क्रांति की ओर एक कदम प्रहलाद सहाय शर्मा, रोनक कूड़ी, मनोहर लाल मीणा, संतोष चौधरी एवं कुलदीप सिंह राजावत	29–31
17.	मधुमक्खी पालन कर अपनी आय बढ़ाये हरिप्रसाद मेघवाल, प्रताप सिंह, मधुलता भास्कर एवं योगेन्द्र कुमार शर्मा	32–33

पर्यावरण संरक्षित खेती

कृष्ण मुरारी शर्मा एवं अभय कुमार व्यास
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

कृषि भारत की जीवनधारा है। भारत में खाद्य और पोषण सुरक्षा, सतत् विकास और गरीबी उन्मूलन सुनिश्चित करने के लिए कृषि महत्वपूर्ण क्षेत्र है। चूँकि हम दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देश के रूप में खड़े हैं, इसलिए कृषि का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि क्षेत्र के योगदान में लगातार गिरावट आई है जो 1950–51 में औसतन 55.12 प्रतिशत से 2021–22 में 15.51 प्रतिशत रहा। इतनी तेजी से गिरावट के बावजूद कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख क्षेत्र बना हुआ है। भारत में कृषि बहुसंख्यक आबादी के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने वाला प्रमुख क्षेत्र है, आज भी यह भारत की आधी आबादी को रोजगार प्रदान कर रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रौद्योगिकी विकास के माध्यम से भारत में हरित क्रांति और उसके बाद कृषि क्षेत्र में हुए विकास ने देश को 1947 से 2021–22 तक खाद्यान्न उत्पादन 6.3 गुना (50 से 315 मीट्रिक टन), बागवानी उत्पादन 10 गुना (32 से 320 मीट्रिक टन) वृद्धि में सक्षम बनाया है। आज, हमारा देश न केवल अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करता है, बल्कि आवश्यक कृषि वस्तुओं के शुद्ध निर्यातक के रूप में भी उभरा है। लेकिन, कृषि रसायनों के व्यापक और अंधाधुंध उपयोग वाली कृषि प्रणाली ने टिकाऊ कृषि के लिए गंभीर खतरे भी पैदा कर दिए हैं। एक अध्ययन के अनुसार लगभग 14 प्रतिशत भारतीय आबादी अल्पपोषित है, जो हमारी खाद्य आपूर्ति की मात्रा और पोषण गुणवत्ता दोनों को संतुलित करने की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करता है।

कुछ दशक पहले तक भारत में पूरी कृषि रणनीति किसी भी कीमत पर एकल आदर्श वाक्य 'ग्रो मोर फूड' पर केंद्रित थी। इस रणनीति से कई सकारात्मक बदलाव आये जैसे खाद्य आत्मनिर्भरता, कई कृषि वस्तुओं के शुद्ध निर्यातक के रूप में उभरना, बेहतर पोषण, कुछ क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन, ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि और रोजगार, और कृषि आय में क्रमिक वृद्धि। लेकिन इन उपलब्धियों के साथ कई नई चुनौतियाँ उभरकर सामने आई हैं जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। कृषि क्षेत्र भोजन, पोषण, पर्यावरण, आय, स्वास्थ्य और आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की चुनौतियों का सामना कर रहा है। भारतीय कृषि की चुनौतियों से निपटने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

मृदा उर्वरता में गिरावट : खाद्यान्न उत्पादन और कारक उत्पादकता की वृद्धि दर में हाल ही में देखी गई गिरावट का प्रमुख कारण एक ओर फसल कटाई के माध्यम से बड़े पैमाने पर पोषक तत्वों की अवशोषण और दूसरी ओर मिट्टी में पोषक तत्वों की पुर्नभरण का निम्न स्तर है। फसलों में असंतुलित पोषण, जैविक खादों के कम प्रयोग, फसलों का अवैज्ञानिक चक्रण व मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों के लगातार दोहन से मृदा उर्वरता स्तर घटता जा रहा है। अनुमानतः भारत देश में प्रति वर्ष खाद व उर्वरकों द्वारा जितनी मात्रा में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश भूमि में दिये जाते है, उससे 10–11 मिलीयन टन अधिक ये तत्व भूमि से शोषित किये जाते हैं।

1960–69 में प्रति किलोग्राम एनपीके से 12.1 किलोग्राम अनाज उत्पादन की तुलना में 2010–17 में 5.1 किलोग्राम अनाज उत्पादन मृदा उर्वरता में उत्तरोत्तर गिरावट दर्शाता है।

असंतुलित पोषक तत्व अनुप्रयोग, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन की कमी और फसल अवशेषों के कम या नगण्य पुनर्चक्रण नही करने से भारत में उर्वरक उपयोग दक्षता बहुत कम है (नत्रजन 30-45%, फास्फोरस 15-25%, पोटाश 50-60%, सल्फर 8-12%, और सूक्ष्म पोषक तत्व 2-5%)। भारत में वर्तमान नत्रजन, फास्फोरस , पोटाश उर्वरक उपयोग 6.7: 2.4:1 का अनुपात में है जबकि आदर्श अनुपात 4:2:1 हैं। जीवांश खादों के कम प्रयोग के परिणामस्वरूप मृदा में जैविक कार्बन कम हो रहा है। रिपोर्ट के अनुसार अधिकांश (83%) भारतीय मिट्टी में जैविक कार्बन की कमी है। जैविक कार्बन मृदा उर्वरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मृदा की दानेदार संरचना, अच्छी जलधारण क्षमता, पौषक तत्वों का संतुलन आदि महत्वपूर्ण मृदा स्वास्थ्य के मापदण्डों के लिए मृदा में जीवांश पदार्थो की मात्रा बनाये रखना आवश्यक है।

- प्रमुख पोषक तत्वों की अनुशंसित मात्रा के प्रयोग के बावजूद फसल उपज में सार्थक वृद्धि नहीं हो पा रही है। इससे पता चलता है कि प्रमुख पोषक तत्वों के अलावा, द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति की आवश्यकता है।
- फसलों द्वारा मिट्टी से पोषक तत्वों के निष्कासन को उनके अनुप्रयोग द्वारा पुर्नभरण किया जाना चाहिए ताकि मिट्टी की उर्वरता बनी रहे।
- फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण व प्रबन्धन करना होगा।
- उर्वरकों का प्रयोग संतुलित एवं अधिक उपयोग दक्षता के साथ करना होगा।
- रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम किये जाने के लिये समन्वित पौषक तत्व प्रबन्धन को अपनायें। रासायनिक उर्वरकों के साथ जीवांश खादें, समावेश करने से न केवल उत्पादकता वृद्धि होती है वरन् दिये गये उर्वरकों का समुचित प्रयोग के साथ–साथ टिकाऊ खेती का आधार मृदा स्वास्थ्य भी बना रहता है। अतः रासायनिक खादों के साथ–साथ जीवांश खादों का भी यथासंभव प्रयोग करने की आवश्यकता हैं।
- अच्छी गुणवत्तायुक्त कम्पोस्ट, गोबर की खाद, सुपर कम्पोस्ट, नेडेप कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, स्वयं किसानों को बनाना चाहिए।
- रासायनिक उर्वरकों के अति–प्रयोग से बचने के लिए अन्य मौजूद विकल्पों में जैव–उर्वरक एक अच्छे माध्यम है। नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक राइजोबियम कल्चर, एजोटोबेक्टर, एजोस्पाइरिलम, एजौला, नील हरित शैवाल एवं एसिटोबेक्टर आदि एवं फॉस्फोरस की घुलनशीलता बढ़ाने वाले जैव–उर्वरक फॉस्फोरस विलायक जीवाणु (पी.एस.बी. कल्चर), माइकोराइजा आदि के प्रयोग द्वारा रासायनिक उर्वरकों की मात्रा कम की जा सकती है।

- फसलचक्र में दलहनी फसलों का समावेश और फसल विविधीकरण की आवश्यकता हैं।

फसलों की न्यून उत्पादकता और उपज वृद्धि में ठहराव : 2050 तक दुनिया की आबादी 9.6 अरब हो जाएगी और भारतीय आबादी 1.7 अरब तक पहुंचने की उम्मीद है। भारत को खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए 430 मिलियन टन (>60%) खाद्यान्न का उत्पादन करने की आवश्यकता है (एफएओ, 2022)। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रति इकाई कृषि उत्पादकता बढ़ाना कृषि विकास का मुख्य ध्यय होना चाहिए क्योंकि लगभग सभी कृषि योग्य भूमि पर खेती की जाती है। भारत में लगभग सभी प्रमुख फसलों की उपज वैश्विक औसत से नीचे है, और उपज के वैश्विक अधिकतम स्तर से काफी नीचे है, उदाहरण के लिए, भारत में गेहूँ की उपज 3.44 टन प्रति हेक्टेयर है जबकि वैश्विक औसत 3.51 टन है। चीन की उपज 5.74 टन है। भारत में मक्का की उपज 3.2 टन प्रति हेक्टेयर जबकि वैश्विक औसत 5.67 टन है। भारत में धान की उपज 3.2 टन प्रति हेक्टेयर है जबकि वैश्विक औसत 4.2 टन है।

1990 के दशक की शुरुआत में पीली क्रांति के माध्यम से तिलहन में आंशिक आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई। भारत दुनिया का चौथा सबसे बड़ा तिलहन उत्पादक है। वैश्विक स्तर पर भारत में तिलहन क्षेत्रफल 20.8% है, जबकि उत्पादन 10% है। दुनिया का चौथां सबसे बड़ा तिलहन फसल उत्पादक देश होने के बावजूद, भारत आज भी वनस्पति तेलों के सबसे बड़े आयातक देशों मे से एक है। 2020–21 के दौरान,घरेलू खाद्य तेल का उत्पादन 9.5 मिलियन टन था जबकि घरेलू तेल की खपत 22.5 मिलियन टन/वर्ष था। वैश्विक स्तर पर भारत में दलहन क्षेत्रफल 38% है, जबकि उत्पादन 28% है। देश की दलहन उत्पादकता 766 किग्रा/हेक्टेयर विश्व की औसत उत्पादकता 1015 किग्रा/हेक्टेयर से काफी कम है।

भारत में फसलों की न्यून उत्पादकता के कारण

- औसत किसान छोटी जोत वाले होते हैं, जिसके कारण उनके लिए आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।
- भारतीय किसानों की कृषि विस्तार सेवाओं, आधुनिक प्रौद्योगिकियों और वैज्ञानिक अनुसंधान तक सीमित पहुंच नवीन उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाने में बाधां डालती है।
- भारत में सिंचाई सुविधाएँ सीमित हैं और अधिकांश किसान अभी भी वर्षा पर निर्भर हैं। हमारे देश में कुल बोए गए क्षेत्र का लगभग 51% हिस्सा वर्षा आधारित कृषि का है और कुल उत्पादन का लगभग 40% हिस्सा है।
- अप्रत्याशित मौसम पैटर्न, जलवायु परिवर्तन और बाढ़, चक्रवात और सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं की घटनाएँ देश के कृषि के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करती हैं।
- अपर्याप्त मृदा संरक्षण उपाय मिट्टी क्षरण में योगदान करते हैं। इससे मृदा उर्वरता कम हो जाती है
- भारत में किसानों को अक्सर मूल्य में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है और किसानों की अपनी उपज के लिए उचित मूल्य नहीं मिलता है।
- अपर्याप्त भंडारण और कोल्ड चेन सुविधाएं, अपर्याप्त ग्रामीण सड़कें जैसी बुनियादी ढांचे की कमी उत्पादन की लागत को बढ़ाती है
- भारत में मशीनीकरण के विस्तार के बावजूद, अधिकांश कृषि कार्य अभी भी मजदूरों द्वारा किया जाता है। छोटी जोत के कारण छोटे किसानों को मशीनीकरण अपनाने में कठिनाई होती है।

खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रति इकाई कृषि उत्पादकता बढ़ाना कृषि विकास का मुख्य ध्यय होना चाहिए। किसानों को तकनीकी ज्ञान के बेहतर प्रसार, प्रशिक्षण और उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप समाधानों की आवश्यकता है।

कृषि रसायनों का कम से कम उपयोग

पर्यावरण को बचाने और हवा, पानी और भोजन की शुद्धता बनाए रखने के लिए, हमें रसायनों के कम से कम उपयोग का विकल्प चुनना होगा और रसायनिक कृषि से पारिस्थितिक कृषि की ओर बढ़ना होगा। रासायनिक खेती दीर्घावधि में सुरक्षित नहीं है, दूसरे शब्दों में टिकाऊ नहीं है। मृदा में जैविक खादों के कम प्रयोग, कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग एवं अकुशल जल प्रबंधन से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल होती जा रही है।

पारंपरिक खेती की तुलना में जैविक खेती अधिक पर्यावरण अनुकूल है। जैविक खेती मृदा स्वस्थ्य और पर्यावरणीय अखंडता को बनाए रखकर उपभोक्ता स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है। खाद्य में पेस्टीसाइड अवशेषों के कारण जैविक खेती तेजी से लोकप्रिय हो रही है क्योंकि उपभोक्ता ऐसे खाद्य पदार्थों की तलाश कर रहे हैं जो स्वास्थ्यवर्धक और सुरक्षित माने जाते हैं। केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के अनुसार, मार्च 2020 में लगभग 2.78 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि जैविक खेती के तहत थी। यह देश के 140.1 मिलियन हेक्टेयर के कुल शुद्ध बोए गए क्षेत्र का 2% है। भारत में जैविक खेती को प्रोत्साहित करने से निकट भविष्य में पोषण, पर्यावरण और स्वस्थ राष्ट्र बनाने में मदद मिलेगी।

लेकिन कृषि वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं का मानना है कि रासायनिक आदानों से छुटकारा पाने से देश फिर से उपज के उस स्तर पर आ जाएगा जो कि बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति करने के लिए पर्याप्त नहीं है। हरित क्रांति के जनक नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. नार्मन बोरलॉग के अनुसार जैविक खेती से कृषि उत्पादकता नहीं बढ़ सकती।

रासायनिक कृषि से फसल की उपज की स्थिरता को बनाए रखने में कठिनाई, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट और बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के कारण, अकार्बनिक और जैविक कृषि के एकीकरण कर समन्वित फसल प्रबन्धन अपनाने पर सहमति है।

उपरोक्त चुनौतियों का सामना करने के लिये ऐसी पर्यावरण संरक्षित कृषि पद्धतियां अपनाये जाने की आवश्यकता है जिनसे न केवल वर्तमान समय की खाद्य व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो वरन भविष्य की आवश्यकता को ध्यान रखते हुए संसाधनों का संरक्षण हो एवं मृदा व वातावरण प्रदुषणमुक्त रहे अूर मृदा उर्वरता स्तर एवं उत्पादक क्षमता बनी रहें। मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के अनुकूल बनाये रखते हुए मृदा स्वास्थ्य का समुचित प्रबंधन करना होगा। कृषि रसायनों का कम से कम या विवेकपूर्ण प्रयोग करने के लिये समन्वित फसल प्रबन्धन करने की आवश्यकता हैं।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन: खरपतवार नियंत्रण में रसायनों के प्रति बढ़ते प्रयोग से वातावरण, मृदा एवं जल प्रदूषण, पशुओ में विषाक्ता, मृदा में सूक्ष्म जीवों की हानि आदि चिंता का विषय है। शाकनाशी–प्रतिरोधी खरपतवारों का विकास टिकाऊ खाद्य उत्पादन के लिए एक चुनौती बनता जा रहा है। मार्च 2023 तक 2023, वैश्विक स्तर पर 267 खरपतवार प्रजातियों की एक या अधिक शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोधी होने की पुष्टि की गई है। भारत में, शाकनाशी प्रतिरोध कई वर्षो से एक समस्या रही है, विशेषकर गेहूं उत्पादन में। भारत में शाकनाशी प्रतिरोध का पहला मामला 1991 में फालारिस माइनर (कैनरीग्रास) के लिए दर्ज किया गया था। भारत में जिन अन्य खरपतवारों ने शाकनाशी प्रतिरोध दिखाया है उनमें रुमेक्स डेंटेटस, चेनोपोडियम एल्बम, पॉलीपोगोन मोनस्प्लेंसिस और जंगली जई शामिल हैं।

अतः प्रभावी खरपतवार प्रबंधन के लिए एकीकृत प्रणाली, समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। समन्वित खरपतवार प्रबंधन में रसायनों की अपेक्षा विभिन्न निरोधी उपाय, कर्षण क्रियायें, यांत्रिक, जैविक, कृषिगत विधियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। सबसे अधिक 'उपचार से बचाव अधिक अच्छा' वाले सिद्धांत पर ध्यान दिया जाता है।

- निरोधी उपाय जैसे शुद्ध बीज का उपयोग, साफ कृषि यंत्रों का उपयोग, सिंचाई नालियों की सफाई, पकी हुई गोबर की खाद का उपयोग, बीज बनने से पहले खरपतवारों को नष्ट करना आदि
- रबी फसल को काटने के तुरन्त बाद खेत की गहरी जुताई कर गर्मी भर छोड़ देना चाहिये। यह विधि कॉस व मोथा के नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावी पाई गई है।
- **स्वच्छ बीज शैय्या:** यदि कृषक के पास सिंचाई उपलब्ध हो फसल बोने से पहले सिंचाई कर खरपतवारों को उग आने दे फिर खेत की अच्छी तरह से जुताई कर खरपतवार नष्ट करके अच्छे बीज शैय्या तैयार करना चाहिये।
- बुवाई कतारों में करना चाहिये ताकि दो कतारों के बीच में निदाई गुड़ाई व अन्य कर्षण क्रियाऐं करने में आसानी रहे और खरपतवारों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सके।
- फसल चक्र में फसलों को अदल बदल कर लेने से खरपतवारों की वृद्धि व जनन पर विपरीत प्रभाव पडता है। फसल चक्र में दलहन फसलें जैसे मूंग, उड़द, अरहर, मटर आदि शामिल करने से खरपतवारों पर प्रभाव तो कम होगा साथ ही भू क्षरण भी बचेगा और मृदा उर्वरकता बढैगी।
- **मल्चिंग या पलवार :** फसलों की कतारों के बीच खाली स्थान पर भूसा, धान का पुआल, प्लास्टिक की चादरें आदि से ढ़क देना चाहिये। शुष्क खेती वाले क्षेत्रों के लिये सर्वोत्तम विधि है क्योंकि इस विधि से खरपतवारों की वृद्धि पर विपरीत असर ही नहीं पड़ता वरन् उपलब्ध नमी का संरक्षण होता है। यह विधि कतारों में बोई गई फसलों में आसानी से अपनाई जा सकती है।
- **जैविक विधियां :** इस विधि में खरपतवारों को विभिन्न कीटों व घोंघें, मछलियों व रोगाणुओं द्वारा नष्ट किया जाता हैं –लेन्टाना कैमारा को क्रोसीडोसामा लेन्टाना तथा एग्रोमाइजा लेन्टानी नामक कीटों से नष्ट किया जा सकता है नागफली को फेक्टोब्लास्टीत फेक्टोरम नामक कीट से नष्ट किया जा सकता है। गाजरघास को जाइग्रोमा वाइलोराटा के लारवा और प्रौढ़ गाजर घास को नष्ट करते हैं।

समन्वित कीट प्रबन्धन : कीटनाशकों से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को रोकने, मित्र कीटों के संरक्षण के लिए, कीटों में कीटनाशकों के प्रति बढ़ती प्रतिरोधी क्षमता को रोकने आदि के लिए कीट प्रबन्धन करने हेतु समन्वित कीट प्रबन्धन तकनीकों का प्रयोग किया जाये।

- कीट प्रतिरोधी सहनशील किस्मों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- शस्य क्रियाऐं जैसे – गर्मी की जुताई, फसल के अवशेषों को नष्ट करना, सही समय पर बुवाई करना, पौधों के बीच निश्चित दूरी रखना, फसल चक्र अपनाना आदि क्रियाओं के अपनाने से कीटों की संख्या को कम करने में सहायता मिलती है।
- जैविक नियंत्रण – प्रयोगशाला में विकसित जैविक एजेन्टों जैसे– ट्राइकोग्रामा, क्राइसोपा एवं एन.पी.वी. को खेतों में कीट नियंत्रण हेतु छोड़ा जाना चाहिए। एन.पी.वी. (विषाणु) से चने की इल्ली, गोभी की इल्ली, रोंयेदार इल्ली, कामलिया कीट का प्रभावकारी नियंत्रण किया जा सकता है। ट्रायकोग्रामा नामक परजीवी मित्र कीट की मादा, हानिकारक कीट के अंडों के ऊपर अंडे देती हैं जिससे हानिकारक कीट के अंडो के पर परजीवी मित्र कीट लार्वा नहीं बनने देता।
- लगातार कीट सर्वेक्षण एवं कीट को आकर्षित करने वाले पदार्थो जैसे फिरोमोन ट्रेप का प्रयोग कर कीटों की बढ़ती हुई संख्या के बारे में जानकारी होती है जिससे कि फसल को आर्थिक नुकसान पहुँचाने से पूर्व ही समन्वित कीट प्रबन्ध शुरू किया जा सके।

समन्वित रोग प्रबन्धन : रोग प्रतिरोधी सहनशील किस्मों का प्रयोग किया जाना चाहिए। शस्य क्रियाऐं जैसे – गर्मी की जुताई, फसल के अवशेषों को नष्ट करना, सही समय पर बुवाई करना, पौधों के बीच निश्चित दूरी रखना, फसल चक्र अपनाना आदि क्रियाओं के अपनाने से विभिन्न रोगों के प्रबधन में सहायता मिलती है।

ट्राइकोडर्मा एक जैव फफूंदनाशी है। यह हानिकारक फफूंदों की वृद्धि को रोकता है। सोयाबीन, उड़द ,मूंग धान, कपास, अरहर, चना, आलू सरसों, अलसी,, लहसुन, प्याज, फूलों एवं फलों इत्यादि में उकठा रोग, पत्तियों का झुलसा, इत्यादि फफूंद जनित रोगों की प्रभावकारी रोकथाम करता है। इसे बीज उपचार के द्वारा या भूमि में गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट, के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

मृदा संरक्षण : भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा 2016 में भूमि क्षरण पर तैयार एक राष्ट्रीय डेटाबेस से पता चलता है कि 120.7 मिलियन हेक्टेयर या भारत की कुल कृषि भूमि का 36.7 प्रतिशत, विभिन्न प्रकार के क्षरण से पीड़ित है, जिसमें जल क्षरण प्रमुख है। नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी (NAAS) के अनुसार, हमारे देश में वार्षिक मृदा क्षरण दर लगभग 15.35 टन प्रति हेक्टेयर है, जिसके परिणामस्वरूप 5.37 से 8.4 मिलियन टन पोषक तत्वों की हानि होती है। मिट्टी की क्षति का फसल उत्पादकता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। लगभग 6.74 मिलीयन हेक्टर लवण प्रभावित मृदा है जिसमें 3.79 मिलीयन हेक्टर उच्च क्षरीयता और लगभग 3 मिलीयन हेक्टर उच्च लवणता के अंतर्गत है। लगभग 11 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि तीव्र मृदा अम्लता (पीएच <5-5) से ग्रस्त है।

- भूमि की उपरी सतह की मृदा सर्वाधिक उपजाऊ होती है। अतः जल व वायु द्वारा भूमि का क्षरण अधिक होने से पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी आती है। अतः जल व वायु द्वारा भू क्षरण के उपाय करना आवश्यक है।
- मेड़बन्दी करके खेत में वर्षा का पानी रूकना चाहिए।
- ढ़लान के विपरीत जुताई एवं बुवाई करना चाहिए।
- मृदा को ढ़कान देने वाली फसलें जैसे मूंग आदि का समावेश कर पट्टीदार खेती भू क्षरण वाले क्षेत्रों में की जानी चाहिए।
- आवश्यकता से अधिक भूपरिष्करण कार्य जैसे जुताई आदि करने से मृदा की संरचना पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, अतः भूमि की कम से कम जुताई करना चाहिए।
- क्षारीय भूमि सुधार हेतु मृदा सुधारक जैसे जिप्सम, गोबर की खाद, ढैंचा की हरी खाद आदि का प्रयोग कर प्रबन्धन करना होगा।
- लवणीय भूमि सुधार हेतु घुलनशील लवणों की मात्रा को निक्षालन की क्रिया द्वारा सरलता से कम किया जा सकता है। शुष्क मौसम में मृदा की ऊपरी सतह से लवण परत को खुरच कर कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है। लवणीयता अवरोधी फसलों के चुनाव तथा लवणीय जल का उचित विधि से प्रयोग करके भी इस समस्या का आंशिक समाधान किया जा सकता है।

सिंचाई जल का कुशलतम प्रयोग : जलवायु परिवर्तन के कारण लगातार वर्षा की मात्रा में कमी होने लगी है और भूमिगत जल में निरन्तर कमी आंकी जा रही है। भारत में पानी की 80% खपत कृषि में सिंचाई के लिए होती है। अत्यधिक दोहन के कारण भूजल स्तर में लगातार गिरावट देखी जा सकती है क्योंकि 65% सिंचाई के लिए भूजल स्रोतों का उपयोग किया जाता है। भारत में सिंचाई सुविधाएँ सीमित हैं और अधिकांश किसान अभी भी वर्षा पर निर्भर हैं। हमारे देश में कुल बोए गए क्षेत्र का लगभग 51% हिस्सा वर्षा आधारित कृषि का है और कुल उत्पादन का लगभग 40% हिस्सा है।

किसान मुख्य रूप से बाढ़ सिंचाई विधियों का पालन करते हैं। हालाँकि आजकल सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ महत्व प्राप्त कर रही हैं, लेकिन गरीब किसान इसे वहन करने में असमर्थ हैं। वर्ष 2021 में बोए गए कुल क्षेत्रफल में से शुद्ध सिंचित क्षेत्र लगभग 68.38 मिलियन हेक्टेयर है। जिसमें से सूक्ष्म सिंचाई के तहत क्षेत्र केवल 12.90 मिलियन हेक्टेयर है जो शुद्ध सिंचित क्षेत्र का केवल 18.8% है।

कुशल जल प्रबन्धन

- **खेत समतलीकरण :** जहाँ तक संभव हो खेतों को समतल रखें तथा हल्की सी ढाल देंवे ताकि सिंचाई जल का सम्पूर्ण खेत में एक समान वितरण हो सकें।
- खेतों में पलेवा देते समय उचित दूरी पर समानान्तर मेड़े बना दी जाए तो खेत के प्रत्येक भाग में समान पानी लगेगा।
- सिंचाई विधि का चयन मुख्यतया जल की उपलब्ध मात्रा, मिट्टी भूमि ढलान, फसल आदि कारकों के अनुसार करना चाहिए
- जहाँ तक संभव हो, सिंचाई से पूर्व खरपतवारों को निकाल दें ताकि ये कम से कम पानी का वाष्पोत्सर्जन कर पायें।
- फसलों के लिए सिंचाई जल सीमित होने पर इसका उपयोग क्रान्तिक अवस्थाओं पर करें जिससे पानी का अधिकतम उपयोग होगा।
- खेत में वर्षा के जल को संरक्षित करने के लिए ग्रीष्मकाल में गहरी–जुताई कर मेड़बन्दी करें।
- पानी की बचत के लिए फव्वारा व बूँद–बूँद सिंचाई पद्धतियाँ अपनायें।
- सिंचाई जल की उपलब्धता अनुसार फसलें उगायें।

संरक्षण कृषि : संरक्षण कृषि एक कृषि प्रणाली है जो स्थायी मृदा आवरण के रखरखाव, न्यूनतम मृदा कर्षण और फसल विविधीकरण को बढ़ावा देता है। यह जमीन की सतह के ऊपर और नीचे जैव विविधता और प्राकृतिक जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ाता है, जो पानी और पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाने और बेहतर और निरंतर फसल उत्पादन में योगदान देता है। मिट्टी में यांत्रिक कर्षण कियाओं को बिल्कुल न्यूनतम कर दिया जाता हैं। संरक्षण कृषि को तीन परस्पर जुड़े सिद्धांतों के आधार पर कृषि भूमि प्रबंधन के लिए एक पारिस्थितिकी तंत्र दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित किया गया है।

- बिना जुताई या कम जुताई के माध्यम से न्यूनतम मृदा कर्षण
- खेत में फसल अवशेषों या आवरण फसलों का रखरखाव
- उचित फसल चक्र के माध्यम से फसल प्रणालियों का विविधीकरण

भारत में, संरक्षण–आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों को विकसित करने, परिष्कृत करने और प्रसारित करने के प्रयास लगभग दो दशकों से चल रहे हैं और तब से इसमें महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। विशेष रूप से, भारत–गंगा के मैदानी इलाकों में चावल–गेहूं चक्र के तहत गेहूं की बुवाई शून्य जुताई के साथ करने पर उल्लेखनीय प्रयास किए गए हैं। संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकियां उत्पादन की लागत को कम करने, पानी और पोषक तत्वों को बचाने, पैदावार बढ़ाने, फसल विविधीकरण बढ़ाने, संसाधनों के कुशल उपयोग में सुधार और पर्यावरण को लाभ पहुंचाने के अवसर प्रदान करती हैं। यद्यपि, संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने में अभी भी बाधाएँ हैं, जैसे छोटे और मध्यम स्तर के किसानों के लिए उपयुक्त कृषि यंत्रों की कमी, फसल अवशेषों को जलाना, कुशल जनशक्ति की अनुपलब्धता और जुताई के बारे में पूर्वाग्रह या मानसिकता। संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने के लिए रणनीतियों को विकसित करने की तत्काल आवश्यकता है। संसाधन संरक्षण के लिये उपकरण लेजर लैंड लेवलर, रोटावेटर, हेप्पीसीडर,शून्य टिल ड्रिल, दबावयुक्त सिंचाई, रोटरी पावर वीडर, वर्टिकल कन्वेयर रीपर कंबाइन, मल्टी–क्रॉप थ्रेशर आदि उपकरणों का प्रयोग महत्वूर्ण है।

आमतौर पर धान की खेती नर्सरी से मुख्य खेत में पौध रोप कर की जाती है। उच्च लागत और खेतिहर मजदूरों की अपर्याप्त उपलब्धता अक्सर रोपाई में देरी करती है। पानी में गारा करने की प्रक्रिया (पडलिंग) में बड़ी मात्रा में पानी की खपत होती है। पडलिंग करने से मिट्टी की संरचना पर भी प्रभाव पड़ता है, जो बाद की फसल पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पानी की आवश्यकता को कम करने, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने और संसाधनों की बचत के साथ–साथ उनके कुशल उपयोग और बाद की फसलों की समय पर बुवाई के लिए धान की सीधी बुवाई प्रणाली को महत्व मिल रहा है। धान की सीधी बुवाई विधि रोपाई और पडलिंग ऑपरेशन से बचाता है और पारंपरिक रोपाई विधि के विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है। सीधी बुवाई में नर्सरी से रोपाई के बजाय सीधे खेत में बीज बोकर धान की फसल उगायी जाती है। रोपाई की पारंपरिक विधि से धान की खेती को मीथेन उत्सर्जन के प्रमुख स्रोतों में से एक माना जाता है। उच्च आर्थिक लाभ के अलावा, सीधी बुवाई सें धान की फसल लगाने में आसान होती हैं, कम अवधि की होती हैं, कम श्रम लगता है, कम पानी की खपत होती है और कम मीथेन उत्सर्जन होता है।

❋❋❋

जैविक खेती: प्राकृतिक खेती का एक नया आयाम

पूनम फौजदार, खजान सिंह, पी. के. पी. मीना एवं नीरज कुमार
कृषि महाविद्यालय, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

भारत अनाज, दलहन और तिलहन सहित विभिन्न प्रकार की खाद्य फसलों का उत्पादन करता है। इसके लिए विविध कृषि केंद्र सरकार की प्राथमिकता है और विशेष रूप से बागवानी, फूलों की खेती औषधीय और सुगंधित पौधों मधुमक्खी पालन और रेशम उत्पादन के क्षेत्रों में विविधीकरण को प्रात्साहित करने के लिए किसानों को तकनीकी और वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है। सरकार बुनियादी ढांचे और खाद्य प्रसंस्करण को प्राथमिकता देकर कृषि व्यवसाय क्षेत्र के विकास की दिशा में लगातार कार्य कर रही है। हालांकि विश्व स्तर के मानकों को प्राप्त करने के लिए प्रौद्योगिकी और कृषि बुनियादी ढांचे के विकास और उन्नयन की गुंजाइश अभी भी है और विशेष रुप से ध्यान गुणवत्ता वृद्धि, बुनियादी ढांचे के विकास और आधुनिक तकनीक के उपयोग पर है। भारत वर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है, अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरको एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है जिससे समान्य व छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही है और जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है एवं साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे हैं। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षो से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिश की गई, जिसे प्रदेश के कृषि विभाग ने इस विशेष प्रकार की खेती को अपनाने के लिए बढ़ावा दिया।

भारत में खाद्य सुरक्षा की लगातार बढ़ती समस्या को कम करने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जैविक खेती की भूमिका का लाभ उठाया जा सकता है। भारत के ग्रामीण राज्यों के तेजी से औद्योगीकरण के साथ, कृषि भूमि के लिए संकट पैदा हो गया है। इसके अलावा, भारत की घातीय जनसंख्या वृद्धि के साथ, खाद्य पर्याप्तता की आवश्यकता समय की आवश्यकता बन गई है। इसके अलावा, कृषि उत्पादों के तेजी से विकास के लिए पौधों के विकास अवरोधक, कीटनाशकों और उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग मानव स्वास्थ्य और संपूर्ण पर्यावरण के लिए हानिकारक है। प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकुल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थो के बीच आदान–प्रदान का चक्र अर्थात्त निरन्तर चलता रहा था, जिसके फलस्वरूप जल, भुमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था। भारत वर्ष में प्राचीन काल से कृषि के साथ–साथ गौ पालन भी किया

जाता था, जिसके प्रमाण हमारे ग्रंथों में प्रभु कृष्ण और बलराम हैं जिन्हें हम गोपाल एवं हलधर के नाम से संबोधित करते हैं अर्थात कृषि एवं गोपालन संयुक्त रूप से अत्यधिक लाभदायी था, जो कि प्राणी मात्र व वातावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी था। परन्तु निरंतर बदलते परिवेश में गोपालन धीरे–धीरे कम हो गया तथा कृषि में तरह–तरह की रसायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है जिसके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थो के चक्र का संतुलन बिगड़ता जा रहा है और वातावरण प्रदूषित होकर, मानव जाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। अब हम रसायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर जैविक खादों एवं दवाईयों का उपयोग कर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जिससे भूमि, जल एवं वातावरण शुद्ध रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे

जैविक खेती कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट एवं वर्मी–कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करते हैं तथा मिट्टी एवं पर्यावरण प्रदूषण से नियंत्रित होती है, ऐसी खेती जैविक खेती कहलाती है। सन् 1905–1924 तक अल्बर्ट हावर्ड तथा उनकी पत्नी गैब्रिएल हावर्ड ने साथ मिलकर शोध किया तथा अपने सिद्धान्तों को इन्होंने अपनी पुस्तक 'An Agricultural Testament' में स्थान दिया जो 1940 में प्रकाशित हुई थी। इनके शोधों ने विद्वानों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। सन् 1990 के बाद लगभग विश्व के सभी बाजारों में जैविक उत्पादों की मांग काफी बढ़ गई।

भारत में जैविक कृषि की शुरुआत सर्वप्रथाम मध्य–प्रदेश राज्य से 2001–2002 में हुई थी। इस समय राज्य के सभी जिले के प्रत्येक विकासखण्डों के एक गाँव में जैविक कृषि का शुभारम्भ कराया गया तथा इन गाँवों को जैविक गाँव का नाम दिया गया। इस प्रकार प्रथम वर्ष में कुल 313 ग्रामों में जैविक खेती की शुरूआत हुई। इसके बाद 2002–03 में द्वितीय वर्ष में प्रत्येक जिले के प्रत्येक विकासखण्ड के दो–दो गांव, वर्ष 2003–04 में दो–दो गांव अर्थात 1565 ग्रामों में जैविक खेती की गई। वर्ष 2006–07 में पुनः प्रत्येक विकासखण्ड में 5–5 गांव चयन किये गये। इस प्रकार प्रदेश के 3130 ग्रामों जैविक खेती का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। मई 2002 में राष्ट्रीय स्तर का कृषि विभाग के तत्वाधान में भोपाल में जैविक खेती पर सेमीनार आयोजित किया गया जिसमें राष्ट्रीय विशेषज्ञों एवं जैविक खेती करने वाले अनुभवी कृषकों द्वारा भाग लिया गया जिसमें जैविक खेती अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया गया। अतः प्रदेश के प्रत्येक जिले में जैविक खेती के प्रचार–प्रसार हेतु चालित झांकी, पोस्टर्स, बेनर्स, साहित्य, एकल नाटक, कठपुतली प्रदर्शन, जैविक हाट एवं विशेषज्ञों द्वारा जैविक खेती पर उद्‌बोधन आदि के माध्यम से प्रचार–प्रसार किया जा रहा है और कृषकों में जन जाग्रति फैलाई जा रही है।

सिक्किम भारत का पहला ऐसा राज्य है, जहां 100 फ़ीसदी जैविक खेती की जाती है। जैविक खेती करने के लिए सिक्कम को ग्लोबल फ्यूच पॉलिसी अवार्ड की श्रेणी में स्वर्णिम पुरस्कार भी दिया गया है। सिक्किम भारत का ही नहीं अपितु पूरे विश्व का पहला जैविक राज्य बना है। सिक्किम भारत का एक ऐसा राज्य है, जहां रसायनिक कीटनाशकों तथा उर्वरकों का उपयोग किए बिना खेती की जाती है। जैविक खेती करने से सिक्किम में पर्यटन में 50% मुनाफा भी हुआ है। यह अपने पर्वतीय परिस्थितिकी तंत्र तथा समृद्ध जैव विविधता के कारण वैश्विक पर्यटन के लिए एक उत्तम स्थान माना जाता है। सिक्किम के पूर्व मुख्यमंत्री पवन कुमार चामलिंग जी ने वर्ष 2016 में रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगा दिया गया था और उपयोग करने पर 1,00,000 तक का जुर्माना तय किया था। भारत सरकार के द्वारा ऑर्गेनिक मिशन को सफल बनाने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे है। इस प्रकार यह भारत का पहला जैविक राज्य बना है। यहां के लोग रसायनिक कीटनाशकों का उपयोग किए बिना अनेक प्रकार की सब्जियां फल आदि उगाते हैं।

जैविक कृषि से उत्पादित सब्जियाँ : राजस्थान के जयपुर जिले से सटे दादिया गांव को राज्य का पहला जैविक गांव बनाया जा रहा है। प्रधानमंत्री आदर्श गांव योजना के अंतर्गत किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य निर्धारित करते हुए इस गांव में जैविक खेती की जाती है। राज्य सरकार के द्वारा जैविक खेती परियोजना को अपनाने के लिए कार्यशाला का भी आयोजन किया गया है। जैविक खेती परियोजना राजस्थान को 10 जिलों में संचालित की जा रही है। इस कार्यशाला में किसानों को बताया जाएगा कि वमह्न कंपोस्ट, जीवामृत खाद का इस्तेमाल कर खेती कैसे की जाती है और बिना रसायनों, रसायनिक खाद और कीटनाशकों का उपयोग किए जैविक खेती कैसे करें।

जैविक खेती के विकास के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने निम्न योजनाएं चलायी है

- मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट फॉर नॉर्थ ईस्ट रीजन
- परंपरागत कृषि विकास योजना

जैविक खेती से मानव स्वास्थ्य का बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस पद्धति से खेती करने में शरीर तुलनात्मक रूप से अधिक स्वस्थ रहता है और औसत आयु भी बढ़ती है। जिससे हमारे आने वाली पीढ़ी भी अधिक स्वस्थ्य रहेंगी। कीटनाशक और खाद का प्रयोग खेती में करने से फसल जहरीला होता है। जैविक खेती से फसल स्वास्थ्य और जल्दी खराब नहीं होता है।

जैविक खेती के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं

- एक बंद प्रणाली के भीतर जितना संभव हो सके काम करना और स्थानीय संसाधनों को आकर्षित करना।
- मिट्टी की उर्वरता को लंबे समय तक बनाए रखने के लिए।
- कृषि तकनीकों के परिणामस्वरूप होने वाले सभी प्रकार के प्रदूषण से बचने के लिए।
- उच्च पोषण गुणवत्ता और पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना।
- कृषि पद्धति में जीवाश्म ऊर्जा के उपयोग को कम से कम करना।
- पशुधन को जीवन की स्थिति देना जो उनकी शारीरिक आवश्यकता की पुष्टि करते हैं।
- कृषि उत्पादकों के लिए अपने काम के माध्यम से जीविकोपार्जन करना और मानव के रूप में अपनी क्षमताओं का विकास करना संभव बनाना।

कृषि के प्रमुख चार घटक होते हैं

1. **फसल उत्पादन :** फसल उत्पादन कृषि का सबसे महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। इस घटक में धान, गेंहूँ, जौ व दलहन सब्जियाँ जैसी विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है। यह मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता जैसे रोटी, कपड़ा व मकान आदि की पूर्ति करता है ।
2. **बागवानी :** कृषि के इस घटक में बागवानी में विभिन्न प्रकार के खाद्य सुरक्षा, औषधि उद्देश्य, सौंदर्य संतुष्टि जैसे पौधों की खेती की जाती है। बागवानी में छाया, सजावटी, एवेन्यू जैसे बागवानों की स्थापना तथा पौधे लगाए जाते हैं।
3. **पशुपालन :** पशुपालन भी कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। पशुपालन व्यापार का एक अच्छा साधन बन सकता है। मांस, अंडा, चमड़ा व दूध आदि आवश्यक सामग्री को प्राप्त करने के लिए पशुपालन किया जाता है। गाय, भैंस–पालन, बकरी पालन, मछली पालन एवं मधुमक्खी पालन आदि कार्य करते हैं।
4. **कृषि वानिकी :** कृषि वानिकी भी कृषि एक अहम हिस्सा का होता है, जिसमें फसल उत्पादन तथा वनों को संतुलित बनाए रखने के लिए खेती करने का कार्य किए जाते हैं।

जैविक खेती प्रणाली

जैविक कृषि प्रणाली प्राचीन कृषि पर आधारित है, जिसमें पृथ्वी तथा मानव के बीच अनुकूल संबंध स्थापित थे, संश्लेषित रसायनों के जगह जीव–जन्तुओं के मल–मूत्र तथा वनस्पतियों के अवषेश आदि का प्रयोग किया जाता था। खाद्यान्न पोषक तत्वों से परिपूर्ण होते थे। जैविक कृषि मुख्यतः दो प्रकार की होती है–

1. शुद्ध (परिष्कृत) जैविक कृषि : इस प्रकार के कृषि व्यवस्था में खेती में पूर्ण रूप से अकार्बनिक उर्वरकों एवं पीड़कनाशकों का उपयोग पूर्णतः वर्जित होता है, जो पर्यावरण, भूमि तथा उपभोक्ता के लिए हानिकारक हो। कविवर घाघ ने अपनी रचनाओं मे इसी प्रकार की कृषि का उल्लेख किया है। जो निम्न है–

"गोबर राखी पाती सड़ै, फिर खेती में दाना पड़ै
सन के डंठल खेत छिटावै, तिनते लाभ चौगुनो पावै
गोबर, मैला, नीम की खली, या से खेती दुनी फली
वही किसानों में है पूरा, जो छोड़ै हड्डी का चूरा"

2. एकीकृत जैविक कृषि : एकीकृत जैविक कृषि प्रणाली को पूरक या आश्रित या समन्वित कृषि प्रणाली भी कह सकते हैं क्योंकि इसमें कृषि के सभी घटक (जैसे–फसल उत्पादन, फल उत्पादन, सब्जी उत्पादन, मवेशी पालन, मधुमक्खी पालन, वानिकी इत्यादि) एक दुसरे पर आश्रित या पूरक होते हैं। इसमें इन घटकों को ऐसे समेकित किया जाता है कि इनमें प्रतिस्पर्धा बिल्कुल ना हो या कम हो तथा पूरकता अधिक से अधिक हो ताकि एक का अवषेश दुसरे के लिए पोषक तत्व के रूप में उपयोगी हो सके और ये चक्र ऐसे ही चलता रहे। जिससे बाहरी संसाधनों की

आवश्यकता ना पड़े या कम पड़े ताकि कृषि लागत में कमी आयें और आय में वृद्धि हो।

जैविक खाद तैयार करने की विधियाँ

नाडेप : इस विधि को ग्राम पूसर जिला यवतमाल महाराष्ट के नारायम देवराव पण्डरी पाण्डे द्वारा विकसित की गई है। इसलिये इसे नाडेप कहते हैं। इस विधि में कम से कम गोबर का उपयोग करके अधिक मात्रा में अच्छी खाद तैयार की जा सकती है। इसमें टांके भरने के लिये गोबर, कचरा (बायोमास) और बारीक छनी हुई मिट्टी की आवश्यकता रहती हैं। जीवांश के लिऐ 90 से 120 दिन वायु संचार प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा उत्पादित की गई खाद में प्रमुख रूप से 0.5 से 1.5% नत्रजन, 0.5 से 0.9% फास्फोरस एवं 1.2 से 1.4% पोटाश के अलावा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के नाडेप टाकों से नाडेप कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है।

पक्का नाडेप : पक्का नाडेप ईंटों के द्वारा बनाया जाता है। नाडेप टांके का आकार 10 फीट लंबा, 6 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊंचा या 12'5'3 फीट का बनाया जाता है। ईंटों को जोडते समय तीसरे, छठवे एवं नवें रद्दे में मधुमक्खी के छत्ते के समान 6–7 के ब्लाक/छेद छोड़ दिये जाते है जिससे टांके के अन्दर रखे पदार्थ को बाह्य वायु मिलती रहे। इससे एक वर्ष में एक ही टांके से तीन बार खाद तैयार किया जा सकता है।

कच्चा नाडेप (भू नाडेप) : भू–नाडेप/कच्चा नाडेप परम्परागत तरीके के विपरित बिना गड्ढा खोदे जमीन पर एक निश्चित आकार (12फीट'5फीट'3फीट अथवा 10फीट'6फीट'3फीट) का अभिन्यास देकर व्यवस्थित ढ़ेर बनाया जाता है। इसकी भराई नाडेप टांके अनुसार की जाती है। इस प्रकार लगभग 5 से 6 फीट तक सामग्री जम जाने के बाद एक आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारों ओर से गीली मिट्टी व गोबर से लीप कर बंदकर कर दिया जाता है। बंद करने के दूसरे अथवा तीसरे दिन जब गीली मिट्टी कुछ कड़ी हो जाये तब गोलाकार अथवा आयताकार टीन के डिब्बे से ढेर की लंबाई व चौड़ाई में 9–9 इंच के अंतर पर 7–8 इंच के गहरे छिद्र बनाये जावे। इन छिद्रों से हवा का अवागमन होता है और आवश्यकता पड़ने पर पानी भी डाला जा सकता है, ताकि बायोमास में पर्याप्त नमी रहे और विघटन क्रिया अच्छी तरह से हो सके। इस तरह से भरा बायोमास 3 से 4 माह के भीतर भली–भांति पक जाता है तथा अच्छी तरह पकी हुई, भुरभुरी र्दुगंध रहित भुरे रंग की उत्तम गुणवत्ता की जैविक खाद तैयार हो जाती है।

नाडेप फास्फो कम्पोस्ट : यह नाडेप के समान ही कम्पोस्ट खाद तैयार करने की विधि है। इसमें अन्य सामग्री के साथ रॉक फास्फेट का भी उपयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप कम्पोट में फास्फेट की मात्रा बढ़ जाती है। प्रत्येक परत के उपर 12 से 15 किलो रॉक फास्फेट की परत बिछाई जाती है और शेष परत दर परत पक्के नाडेप टांके अनुसार ही टांके की भराई की जाती है और गोबर मिट्टी से लीप कर सील कर दिया जाता है। एक टांके में करीब 150 किलो रॉक फास्फेट की आवश्यकता होंगी।

पिट कम्पोस्ट : इस विधि को सर्वप्रथम 1931 में अलबर्ट हावर्ड और यशवंत बाड ने इन्दौर में विकसित की थी। अतः इसे इंदौर विधि के नाम से भी जाना जाता है। इस पद्धति में कम से कम 9'5'3 फीट व अधिक से अधिक 20'5'3 फीट आकार के गड्ढ़े बनाए जाते हैं। इन गड्ढ़ों को 3 से 6 भागों में बांट दिया जाता है इस प्रकार प्रत्येक हिस्से का आकार 3'5'3 फीट से कम नहीं होना चाहिये। प्रत्येक हिस्से को अलग अलग भरा जावे एवं अंतिम हिस्सा खाद पलटने के लिए खाली छोड़ा जावें।

नाडेप टांका कम्पोस्ट खाद तैयार करने की विधि : वानस्पतिक बेकार पदार्थ जैसे सूखे पत्तो, छिलके, डंठल, टहनिया व जड़े आदि 1400 से 1600 किलो लेकिन विशेष रुप से ध्यान रखें कि इसमें प्लास्टिक कांच एवं पत्थर नहीं रहे। इसके लिए गोबर 100 से 120 किलो (8 से 10 टोकरी) गोबर गैस से निकली स्लरी भी ली जा सकती है। सूखी छनी हुई खेत या नाले की मिट्टी 600 से 800 किलो (120 टोकरी) गो–मूत्र से सनी मिट्टी विशेष लाभदायी होती है। साधारणतया 1500 से 2000 लीटर पानी का उपयोग किया जा सकता है एवं मौसम के अनुसार पानी की मात्रा कम या ज्यादा लग सकती है।

नाडेप बनाने की विधि

टांका भरने की विधि: नाडेप पद्धति में खाद सामग्री एक ही दिन में या ज्यादा से ज्यादा 48 घंटे में पूरी तरह से टांका में भरकर सील कर दें।

प्रथम भराई: टांका भरने से पहले टांके के अंदर की दीवार एवं फर्श गोबर व पानी के घोल से अच्छा गीला कर दें।

पहली परत: वानस्पतिक पदार्थ कचरा, डंठल, टहनियां, पत्तियाँ आदि पूरे टांके में छः इंच की ऊचाई तक भर दें। इस 30 घनफीट में 100 से 110 किलो वानस्पतिक सामग्री आएगी। इस परत में 3 से 4 प्रतिशत नीम या पलाश की हरी पत्तियाँ मिलाना लाभप्रद होगा। जिससे दीमक पर नियंत्रण होगा।

दूसरी परत: गोबर का घोल 125 से 150 लीटर पानी में 4 किलो गोबर मिलाकर पहली परत के उपर इस तरह छिड़कें कि पूरी वानस्पतिक सामग्री अच्छी तरह भीग जाए। गर्मी में पानी की मात्रा अधिक रखें। यदि बायोगैस की स्लरी उपयोग करें तो 10 लीटर स्लरी को 125 से 150 लीटर पानी में घोल कर छिड़कें।

तीसरी परत: भीगी हुई दूसरी पतर के उपर, साफ छनी हुई मिट्टी 50 से 60 किलो के लगभग समान रूप से बिछा दें। परतों के इसी क्रम में टांके को उसके मुँह से 1.5 फीट उपर तक झोपड़ीनुमा आकार से भरें। सामान्यतः 11–12 परतों में टांका भर जावेगा। टांका भरने के बाद टांका सील करने के लिए 3 इंच मिट्टी (400 से 500 किलो) की परत जमा कर गोबर से लीप दें। अगर इस पर दरारें पड़े तो उन्हे पुनः गोबर से लीप दें।

द्वितीय भराई: 15–20 दिन बाद टांके में भरी सामग्री सिकुड़ कर 8–9 इंच नीचे चली जायेगी, तब पहली भराई की तरह ही वानस्पतिक पदार्थ, गोबर का घोल एवं छनी मिट्टी की परतों से टांके को उनके मुँह से 1.5 फीट उपर तक भरकर पहले भराव के समान ही सील कर लीप दें।

सावधानियां: नाडेप कम्पोस्ट को पकने के लिये 90 से 120 दिन लगते है। इस दौरान नमी बनी रहने के लिए एवं दरारे बंद करने के लिए गोबर पानी का घोल छिड़कते रहें व दरारें न पड़ने दें। घास आदि उगे तो उसे उखाड़ दे व नमी कायम रखें। कड़ी धूप हो तो घास–फूस से छाया कर दें।

खाद की परिपक्वता: खाद 3–4 महीने में गहरे भूरे रंग की बन जाती है और दुर्गध समाप्त होकर अच्छी खुशबू आती है। खाद सूखना नहीं चाहिये। इस खाद को एक फीट में 35 तार वाली चलनी से छान लेना चाहिये और फिर उपयोग में लेना चाहिये। छलनी के उपर से निकला अधपका कच्चा खाद फिर से खाद बनाने के काम में लेना चाहिये। एक टांके से निकला खाद 6–7 एकड़ भूमि को दिया जा सकता है। एक टांके से 160 से 175 घन फीट छना खाद व 40 से 50 घन फीट कच्चा माल मिलेगा। मतलब एक टांके से 3 टन (लगभग 6 बैलगाड़ी) अच्छा पका खाद मिल सकता है। नाडेप टांका विधि से कम से कम गोबर में अधिकाधिक मात्रा में अच्छी गुणवत्ता का खाद तैयार होता है। मात्र एक

गाय के साल भर के गोबर से 10 टन खाद मिलने की संभावना है। जिसमें नत्रजन 0.5 से 1.5 प्रतिशत, फास्फोरस 0.5 से 0.9 प्रतिशत तथा पोटाश 1.2 से 1.4 प्रतिशत होता है।

बायोगैस स्लरी : बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 25 % ठोस पदार्थ रूपान्तरण गैस के रूप में होता है और 75 % ठोस पदार्थ का रूपान्तरण खाद के रूप में होता हैं। जिसे बायोगैस स्लरी कहा जाता हैं। यह दो घनमीटर के बायोगैस संयंत्र में 50 किलोग्राम प्रतिदिन या 18.25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता है। उस गोबर में 80 प्रतिशत नमी युक्त करीब 10 टन बायोगैस स्लेरी का खाद प्राप्त होता हैं। ये खेती के लिये अति उत्तम खाद होता है। इसमें 1.5 से 2% नत्रजन, 1% फास्फोरस एवं 1% पोटाश होता हैं।

बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 20 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनियम नाइट्रेट के रूप में होता है। अतः यदि इसका तुरंत उपयोग खेत में सिंचाई नाली के माध्यम से किया जाये तो इसका लाभ रासायनिक खाद की तरह फसल पर तुरंत होता है और उत्पादन में 10–20 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। स्लरी के खाद में नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषण तत्व एवं ह्यूमस भी होता हैं। जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है तथा जल धारण क्षमता बढ़ती है। सूखी खाद असिंचित खेती में 5 टन एवं सिंचित खेती में 10 टन प्रति हैक्टर की आवश्यकता होगी। ताजी गोबर गैस स्लरी सिंचित खेती में 3–4 टन प्रति हैक्टर में लगेगी। सूखी खाद का उपयोग अन्तिम बखरनी के समय एवं ताजी स्लरी का उपयोग सिंचाई के दौरान करें। स्लरी के उपयोग से फसलों को तीन वर्ष तक पोषक तत्व धीरे–धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट : केंचुआ को कृषकों का मित्र एवं भूमि की आंत कहा जाता हैं। यह सेन्द्रिय पदार्थ ह्यूमस व मिट्टी को समतल करके जमीन के अंदर अन्य परतों में फैलाता हैं। इससे जमीन खोखली होती है व हवा का आवागमन बढ़ जाता है तथा जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है। केंचुओं के उदर में जो रसायनिक क्रिया व सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया होती है, जिससे भूमि में पाये जाने वाले नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश एवं अन्य सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता बढ़ती हैं। वर्मी कम्पोस्ट में दुर्गंध नहीं आती है और वातावरण प्रदूषित नहीं होता है। तापमान नियंत्रित रहने से जीवाणु क्रियाशील तथा सक्रिय रहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट डेढ़ से दो माह के अंदर तैयार हो जाता है। इसमें 2.5 से 3% नत्रजन, 1.5 से 2% फास्फोरस तथा 1.5 से 2% पोटाश पाया जाता है।

तैयार करने की विधि: कचरे से खाद तैयार हेतु उसमें से कांच–पत्थर, धातु के टुकड़े अच्छी तरह अलग करते हैं। इसके पश्चात वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिये 10x4 फीट का प्लेटफार्म जमीन से 6 से 12 इंच तक ऊंचा तैयार किया जाता है। इस प्लेटफार्म के ऊपर 2 रद्दे ईट के जोडे जाते हैं तथा प्लेटफार्म के ऊपर छाया हेतु झोपड़ी बनाई जाती हैं प्लेटफार्म के ऊपर सूखा चारा, 3–4 क्विंटल गोबर की खाद तथा 7–8 क्विंटल कूड़ा–करकट (गार्वेज) बिछाकर झोपड़ीनुमा आकार देकर अध–पका खाद तैयार हो जाता है जिसकी 10–15 दिन तक झारे से सिंचाई करते हैं, जिससे कि अध–पके खाद का तापमान कम हो जाए। इसके पश्चात 100 वर्ग फीट में 10 हजार केंचुए के हिसाब से छोड़े जाते हैं। केचुए छोड़ने के पश्चात् टांके को जूट के बोरे से ढंक दिया जाता हैं और 4 दिन तक झारे से सिंचाई करते रहते हैं, ताकि 45–50 प्रतिशत नमी बनी रहें। इस बात का विशेष ध्यान रखे कि अधिक गीलापन रहने से हवा अवरूद्ध हो जायेगी ओर सूक्ष्म जीवाणु तथा केंचुऐ मर जायेगें या कार्य नही कर पायेंगे।

सिंचाई 45 दिन के पश्चात बंद कर दी जाती है और जूट के बोरों को हटा दिया जाता है। बोरों को हटाने के बाद ऊपर का खाद सूख जाता है तथा केंचुए नीचे नमी में चले जाते हैं। तब ऊपर की सूखी हुई वर्मी कम्पोस्ट को अलग कर लेते हैं। इसके 4–5 दिन पश्चात पुनः टांके की ऊपरी खाद सूख जाती है और सूखी हुई खाद को ऊपर से अलग कर लेते हैं इस तरह 3–4 बार में पूरी खाद टांके से अलग हो जाती है और अंतिम परत में केंचुए बच जाते हैं, जिनकी संख्या 2 माह में टांके में डाले गये केंचुओं की संख्या से, दोगुनी हो जाती हैं। इस बात का ध्यान रखें कि खाद हाथ से निकालें न कि गैंती, कुदाल या खुरपी का प्रयोग करें। टांकें से निकाले गये खाद को छाया में सुखा कर तथा छानकर छायादार स्थान में भण्डारित किया जाता है। वर्मी कम्पोस्ट की मात्रा गमलों में 100 ग्राम, एक वर्ष के पौधों में एक किलोग्राम तथा फसल में 6–8 क्विंटल प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। वमह्न वॉश का उपयोग करते हुए प्लेटफार्म पर दो निकास नालिया बना देना अच्छा होगा ताकि वर्मी वॉश को एकत्रित किया जा सकें।

केंचुए खाद के गुण

- इसमें नत्रजन, स्फुर, पोटाश के साथ अति आवश्यक सूक्ष्म तत्व कैल्श्यिम, मैग्नीशियम, तांबा, लोहा, जस्ता और मोलिवड्नम तथा बहुत अधिक मात्रा में जैविक कार्बन पाया जाता है ।
- केंचुएँ के खाद का उपयोग भूमि, पर्यावरण एवं अधिक उत्पादन की दृष्टि से लाभदायी है।

हरी खाद : मिट्टी की उर्वरा शक्ति जीवाणुओं की मात्रा एवं क्रियाशीलता पर निर्भर रहती है क्योंकि बहुत सी रासायनिक क्रियाओं के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं की आवश्यकता रहती है। जीवित व सक्रिय मिट्टी वही कहलाती है जिसमें अधिक से अधिक जीवांश हो। जीवाणुओं का भोजन प्रायः कार्बनिक पदार्थ ही होते है और इनकी अधिकता से मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव पड़ता है अर्थात केवल जीवाणुओं से मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने की क्रियाओं में हरी खाद प्रमुख है। इस क्रिया में वानस्पतिक सामग्री को अधिकांशतः हरे दलहनी पौधों को उसी खेत में उगाकर जुताई कर मिट्टी में मिला देते है। हरी खाद हेतु मुख्य रूप से सनई, ढेंचा, लोबिया, उड्द व मूंग इत्यादि फसलों का उपयोग किया जाता है।

भभूत अमृत पानी : अमृत पानी तैयार करने के लिए के लिए 10 किलोग्राम गाय का ताजा गोबर, 250 ग्राम लौनी घी, 500 ग्राम शहद और 200 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम 200 लीटर के ड्रम में 10 किलोग्राम गाय का ताजा गोबर डालें, उसमें 250 ग्राम लौनी घी, 500 ग्राम शहद को डालकर अच्छी तरह मिलायें। इसके पश्चात ड्रम को पूरा पानी से भर ले तथा एक लकड़ी की सहायता से घोल तैयार करें। इस घोल का कतार के बीच में 3 से 4 बार प्रयोग तब करें, जब फसल 15 से 20 दिन की हो जावें। इसके प्रयोग के समय मृदा में नमी का होना अति आवश्यक है। अमृत पानी के प्रयोग के पूर्व 15 किलोग्राम बरगद के नीचे की मिट्टी एक एकड़ में समान रूप से बिखेर दें।

अमृत संजीवनी : एक एकड़ भूमि हेतु अमृत संजीवनी तैयार करने के लिये सामग्री में 3 किलोग्राम यूरिया, 3 किलोग्राम सुपर फास्फेट एवं 1 किलोग्राम पोटाश तथा 2 किलोग्राम मूंगफली की खली, 80 किलोग्राम गोबर एवं 200 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। अतः इसको तैयार करने के लिए उक्त सामग्री को एक ड्रम में डालकर अच्छी तरह मिला दें और ड्रम के ढक्कन को बंद करके 48 घंटे के लिए छोड़ दें तथा प्रयोग के समय ड्रम को पूरा पानी से भर दे। जब खेत में पर्याप्त नमी हो, तब बुवाई के पूर्व इसे समान रूप से एक एकड़ में छिड़क दे। जब फसल 15–20

दिन की हो जावे तब खड़ी फसल में कतार के बीच में 3–4 बार 15 दिन के अंतराल पर छिड़के, जितना संभव हो सकें, पत्तों को घोल के संपर्क में आने से रोकें।

जैविक पद्धति द्वारा जैविक कीट एवं व्याधि नियंत्रण के कृषकों के अनुभव : जैविक कीट एवं व्याधि नियंत्रण के उपाय विभिन्न कृषकों के अनुभव के आधार पर तैयार कर प्रयोग किये गये हैं, जो कि इस प्रकार हैं–

गौ–मूत्र

गौमूत्र कांच की बोतल में भरकर धूप में रखें, जितना पुराना गौमूत्र होगा उतना अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। फसलों में बुआई के 15 दिन बाद 12–15 मि.मी. गौमूत्र प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रेयर पंप से प्रत्येक 10 दिन के अंतराल में छिड़काव करने से फसलों में रोग एवं कीड़ों में प्रतिरोधी क्षमता विकसित होती है जिससे प्रकोप की संभावना कम रहती है।

नीम के उत्पाद : नीम भारतीय मूल का पौधा है, जिसे समूल ही वैद्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। इससे मनुष्य रोग हेतु उपयोगी औषधियां तैयार की जाती हैं तथा इसके उत्पाद फसल संरक्षण के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। नीम पत्ती का घोल नीम की 10–12 किलो पत्तियाँ एवं 200 लीटर पानी में 4 दिन तक भिगोंयें। जब पानी हरा पीला हो जायें, तब इसे छानकर एक एकड़ की फसल पर छिड़काव करने से इल्ली की रोकथाम होती है। इसमें धतूरा व तम्बाकू आदि के पत्तों को मिलाकर काड़ा बनाने से औषधि की तीव्रता बढ़ जाती है और यह दवा कई प्रकार के कीड़ों को नष्ट करने में उपयोगी सिद्ध हुई है। नीम की निबोली 2 किलो लेकर महीन पीस लें व इसमें 2 लीटर ताजा गौ मूत्र मिला लें। इसमें 10 किलो छांछ मिलाकर 4 दिन तक रखें और 200 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें। नीम की खली का उपयोग जमीन में लगी दीमक, सफेद लट एवं अन्य कीटों की इल्लियाँ तथा प्यूपा को नष्ट करने तथा भूमि जनित रोग विल्ट आदि की रोकथाम के लिये किया जा सकता है।

लकड़ी की राख : 1 किलो राख में 10 मि.ली. मिट्टी का तेल मिलाकर बने हुए पाउडर का छिड़काव 25 किलो प्रति हेक्टर की दर से करने पर एफिड्स एवं पंपकिन बीटल का नियंत्रण हो जाता है।

भिल्लोटक : का उपयोग छत्तीसगढ़ में धान की जैविक खेती में कीट–प्रबन्धन के लिये किया जाता है।

ट्राईकोडर्मा : ट्राईकोडर्मा एक ऐसा जैविक फफूंद नाशक है जो पौधों में मृदा एवं बीज जनित रोगों को नियंत्रित करता है। बीजोपचार में 5–6 ग्राम प्रति किलोगाम बीज की दर से उपयोग किया जाता है। मृदा उपचार में 1 किलोग्राम ट्राईकोडर्मा को 100 किलोग्राम अच्छी सड़ी हुई खाद में मिलाकर अंतिम बिखेरनी के समय प्रयोग करें। कटिंग व जड़ उपचार 200 ग्राम ट्राईकोडर्मा को 15–20 लीटर पानी में मिलाये और इस घोल में 10 मिनिट तक रोपण करने वाले पौधों की जड़ों एवं कटिंग को उपचारित करें। ट्राईकोडर्मा 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतराल पर खड़ी फसल में 3–4 बार छिड़काव करने से वायुजनित रोग का नियंत्रण होता है।

भिल्लोटक (Chloroxylon)

जैविक खेती से होने वाले लाभ

कृषकों की दृष्टि से लाभ

- भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है।
- सिचाई अंतराल में वृद्धि होती है।
- रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।
- बाज़ार में जैविक उत्पादों की मांग बढ़ने से किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

मिट्टी की दृष्टि से

- जैविक खाद का उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।
- भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा।

पर्यावरण की दृष्टि से

- भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है।
- मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।
- कचरे का उपयोग खाद बनाने में करने से रोगों में कमी आती है।
- फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि होती है।
- अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की जैविक क्रिया गुणवत्ता पर खरा उतरना।

निष्कर्ष : जैविक खेती एक सुरक्षित, स्वस्थ और पर्यावरण मित्र खेती प्रथा है जो कि मानव समुदाय को उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य प्रदान करने में मदद करती है। जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णतः सहायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है, साथ ही कृषकों को आय अधिक प्राप्त होती है तथा अंतराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उतरते हैं। जिसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण प्रदूषण, भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नितान्त आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हों, वातावरण शुद्ध रहे एवं पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती की कृषि पद्धतियाँ को अपनाना होगा जोकि हमारे नैसर्गिक संसाधनों एवं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बगैर समस्त मानव जाति को खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सकेगी। यह अद्‌भुत तरीके से संवर्धनशीलता को प्रोत्साहित करती है और भविष्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद करती है। इसके प्राकृतिक दिशा–निर्देशों का पालन करके हम स्वस्थ और समृद्धिशाली भविष्य की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं।

रबी फसलों में पर्णीय सूक्ष्म तत्व एवं अजैविक कारक प्रबंन्धन

उदिती धाकड़, शालिनी मीणा, सत्यनारायण रेगर एवं एस. एन. मीणा
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

फसलीय पौधें अपनी वृद्धि व जीवन चक्र पूरा करने के लिए मृदा, जल एवं वायु से कई तत्वों का अवशोषण करते है। इनकी अनुपस्थिति में पौधें अपने जीवन चक्र को सफलतापूर्वक पूर्ण नहीं कर सकते, इसलिए इन्हें आवश्यक पोषक तत्व कहते है। विशेष तत्व की कमी होने पर उस तत्व को बाह्य रूप से देकर ही कमी दूर की जा सकती है व फसलीय पौधें को स्वस्थ बनाये रखा जा सकता है। लगातार लम्बे समय से अपर्याप्त एवं असंतुलित खाद व उर्वरक उपयोग से प्रमुख पोषक तत्वो के साथ ही सूक्ष्म तत्वों की भी कमी होती जा रही है। फसलों का अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पोषक तत्व पर्याप्त एवं संतुलित मात्रा में हो। फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति मृदा से आंशिक रूप में ही हो सकती है, अतः इस कमी की आपूर्ति कार्बनिक, जीवाणु खाद एवं उर्वरकों द्वारा पोषक तत्वों को देकर ही पूरी की जा सकती है। पौधे जल व वायु से कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन प्राप्त करते है। अतः इन तत्वों को देने की आवश्यकता नहीं होती है परंतु पौधों की आवश्यकतानुसार उर्वरकों द्वारा दिये जाने वाले तत्वों को जिनकी अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है–मुख्य पोषक तत्व (नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश) जिनकी पर्याप्त आवश्यकता होती है, द्वितीय/सूक्ष्म पोषक तत्व (गंधक, मैग्नीशियम एवं कैल्सियम,लोहा, तांबा, जस्ता, मैग्नीज, बोरोन, मोलिब्डेनम) हैं। ज्यादा शस्य सघनता, अधिक उपज देने वाली किस्मों के उगाने, उच्च विश्लेषण उर्वरकों के लगातार प्रयोग के परिणामस्वरूप सूक्ष्म पोषक तत्वों की मृदा में कमी होती जा रही है परिणामस्वरूप फसल वृद्धि व उत्पादकता में कमी हो रही है। अतः यदि सूक्ष्म तत्व मृदा में उपयोग नहीं किये जाए तो सूक्ष्म तत्वों के पर्णीय छिड़काव द्वारा इनकी कमी की पूर्ति की जाकर अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

जिंक : भारत व राजस्थान की मृदाओं में जिंक की बहुत कमी होती जा रही है जो पौधों की संतुलित वृद्धि के लिए,काफी कम है।

महत्व एवं कार्य

- रोग रोधकता बढ़ाना।
- फसल जल्दी पकना व दाने व फल मोटे व चमकदार होना।
- नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश की क्रियात्मकता को बढ़ाना।
- पौधों की बढ़वार में सहायक।
- पाले से प्रतिरोधकता में वृद्धि।

जस्ते की कमी के लक्षण : जस्ते की कमी के लक्षण मुख्यतः पौधों के ऊपरी भाग से दूसरी अथवा तीसरी पूर्ण परिपक्व पत्तियों से प्रारंभ होते है। पौधे छोटे रह जाते हैं और जड़ों की वृद्धि रूक जाती है। फसल की मंद गति से वृद्धि होती हैं। ऊपर की पत्तियां सामान्यतः पीली तथा नीचे की पत्तियां भूरी अथवा कांसे के रंग जैसी प्रतीत होती है।

गेहूँ

जिंक की कमी : जिंक की कमी के कारण पौधों की वृद्धि में कमी हो जाती है। पत्तियाँ बीच की शिरा के पास से समानान्तरण पीली पड़ जाती है व शिरा हरी रहती है। ज्यादा प्रकोप में पत्तियों मटमैली धारियां तथा तैलिया धब्बे पड़ जाते है। ऐसे पौधे छोटे छोटे सीमित क्षेत्रों में पाये जाते है। यह कमी तीसरी व चौथी पत्ती की अवस्था से शुरू जोती है। नत्रजन देने के बाद भी ऐसे क्षेत्रों में हरापन नहीं आता है। ऐसे लक्षण दिखाई देने पर 5 किलो जिंक सल्फेट + 2.5 किलो चूना, बुझा हुआ प्रति हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें एवं आवश्यकतानुसार पुनः छिड़काव करें।

गेहूँ फसल की अच्छी वृद्धि हेतु 70–75 दिन बाद ब्रासिनोस्टेराइड के 0.5 पीपीएम (0.5 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी) व साटोकाइनिन के 10 पीपीएम (10 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल पत्तियों पर छिड़काव करने से उत्पादन में वृद्धि पाई गयीं है।

गेहूँ में जिंक की कमी के लक्षण

गेहूँ में लोहे की कमी के लक्षण

गेहूँ में गन्धक की कमी के लक्षण

पाले से बचाव : पाले से बचाव हेतु फसल पर पाला पड़ने की संभावना दिखाई देते ही 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब का छिड़काव करें, हल्की सिंचाई करें।

अधिक तापमान से बचाव : कई बार अचानक तापक्रम में वृद्धि हो जाती है, जिनमें दानों के आकार व वजन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा उपज में कमी हो जाती है, ऐसे में पोटेशियम क्लोराइड 0.2 प्रतिशत या कैल्शियम क्लोराइड 0.1 प्रतिशत का बाली बनने व दाना बनने की अध्वस्था पर पर्णीय छिड़काव करना लाभदायक रहता है।

गंधक (सल्फर) : यह दूसरे तत्वों की तरह ही अधिक उपज के लिए आवश्यक है। अतः गंधक की कमी को दूर करना चाहिए। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि जितना सल्फर भूमि में उपलब्ध रहता है उससे अधिक तिलहनी फसलों द्वारा अवशोशित किया जाता है। सर्वेक्षण के अनुसार राजस्थान में 33 प्रतिशत सल्फर की कमी तथा कोटा संभाग में भी 20–40 प्रतिशत मिट्टी के नमूनों में गंधक की कमी पाई गई है व अधिकांश उत्कृष्ट परिणाम भारी मिट्टी में सल्फर उपयोग में आये व उपज वृद्धि (21 प्रतिशत से अधिक अनाज, 20 प्रतिशत से अधिक दालों व 25 प्रतिशत से अधिक तिलहन में) देखी गई।

महत्व एवं कार्य : मीथियोनिन व सिस्टिन जैसे गंधक युक्त एमिनो अम्ल का निर्माण।

- प्रोटीन संश्लेषण में सहायक व पर्णहरित का निर्माण व गुणवत्ता में सुधार।
- तिलहनी बीजों में तेल की मात्रा में वृद्धि।

कमी के लक्षण :

- सरसों में नयी पत्तियों व तना पर लाल रंग बन जाना, पत्तियों का कपनुमा व कठोर बनना तथा कभी–कभी फूलों का परिपक्व होने से पहले गिर जाना।
- पौधे की ऊपरी नई पत्तियों की शिरायें व शिराओं के बीच के भाग हल्के हरे रंग के हो जाते है।
- पौधे की वृद्धि धीमी हो जाती है।
- गंधक की कमी से तेल की मात्रा में कमी आना।

सरसों : खड़ी फसल में जिंक की कमी दिखाई देने पर 50 दिन की फसल पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चने का घोल बनाकर छिड़के। सरसों की खड़ी फसल पर थायो यूरिया 0.1 प्रतिशत के दो छिड़काव 45 दिन व 60 दिन पर करने से उपज में वृद्धि होती है।

सरसों में जिंक की कमी के लक्षण

सरसों में गन्धक की कमी के लक्षण

चना : चना फसल की बुवाई से पूर्व सिफारिश उर्वरकों की मात्रा देने के बाद खड़ी फसल में फूल शुरू होने व फली बनने की शुरूआत अवस्था में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.1 प्रतिशत बुझे चूने का पर्णीय छिड़काव करें।

चने में जिंक की कमी के लक्षण

चने में लोहे की कमी के लक्षण

पाले से बचाव : दिसम्बर से फरवरी तक पाला पड़ने की संभावना रहती है अतः इस समय यदि आवश्यकता हो तो बचाव हेतु 1000 लीटर पानी में एक लीटर गंधक को तेजाब मिलाकर एक हैक्टर में स्प्रेयर द्वारा पौधों पर अच्छी तरह से छिड़काव करें एवं संभावित पाला पड़ने की अवधि में इस छिड़काव को आवश्यकतानुसार दोहरावें। पाला पडने की संभावना हो, तब एक हल्की सिंचाई करें व पाला पड़ने की आशंका वाली रात्रि को खेत की उत्तर दिशा में या चारों ओर धुंआ करें।

धनियां

पाले से बचाव : पाला पड़ने की संभावना हो तब एक हल्की सिंचाई करें। फसल पर 0.1 प्रतिशत (1000 लीटर में एक लीटर) गंधक के तेजाब का छिड़काव करें। पाला पड़ने की आशंका वाली रात्रि को धुंआ करें।

अलसी : खडी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें।

मटर : खड़ी फसल मे एन. पी. के. 19:19:19 का 0.5 प्रतिशत पर्णीय छिड़काव फूल आने से पूर्व तथा फली बनते समय करें।

मसूर : मृदाओं में जस्ते की कमी पाई जावे वहाँ पर खडी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूने के घोल का छिड़काव करें। घुलनशील उर्वरक एनपीके (19:19:19) का 0.5 प्रतिशत के दो पर्णीय छिड़काव क्रमशः फूल आने एवं फली बनने के समय करने पर अधिक दाना उपज में वृद्धि होती होती है। मसूर की खड़ी फसल में थायोयूरिया 500 पीपी एम (0.5 ग्राम/लीटर पानी) का पर्णीय छिड़काव फली बनने के समय (बुवाई के 65 दिन बाद) करने पर अधिक उपज प्राप्त करने में सहायक होता है।

राजमा : खड़ी फसल में दो बार दो प्रतिशत यूरिया का पर्णीय छिड़काव बुवाई के 45 दिन बाद (फूल आने से पहले) व 70 दिन बाद (फलियां बनते समय) करें।

पाले से बचाव : दिसम्बर जनवरी में पाले से बचाव हेतु फसल पर 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब का छिड़काव करें। पाला पड़ने की संभावित अवधि में इस छिड़काव को दोहरायें।

अफीम : पाले से बचाव हेतु 50 प्रतिशत फूल आ जाने पर गंधक के तेजाब के 0.1 प्रतिशत घोल का दो बार छिड़काव (1000 लीटर पानी में एक लीटर तेजाब) किया जा सकता है।

फसल उत्पादन में तरल उर्वरकों का महत्व

सत्यनारायण रेगर, उदिती धाकड, एस. एन. मीणा एवं प्रताप सिंह
कृषि महाविद्यालय कोटा, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

कृषि उत्पादन में उर्वरकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। उर्वरक पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं, जिससे उनकी वृद्धि और विकास सुचारू रूप से हो सके। आधुनिक खेती में तरल उर्वरकों का महत्व तेजी से बढ़ रहा है, क्योंकि ये कई मायनों में ठोस उर्वरकों से बेहतर साबित हो रहे हैं। तरल उर्वरक के उपयोग से कृषि में जल उपयोग दक्षता बढ़ती है और पौधों की पानी की आवश्यकता कम हो जाती है। तरल उर्वरक बीज के अंकुरण को तेज करते हैं और पौधों को तेजी से बढ़ने में मदद करते हैं। तरल उर्वरक विशेष रूप से पोषक तत्वों को जल्दी और सटीक रूप से पौधों तक पहुँचाने के लिए जाने जाते हैं। फसल उत्पादन में तरल उर्वरकों के महत्व को समझना जरूरी है ताकि हम कृषि उत्पादकता को बढ़ा सकें और किसानों की आय में सुधार कर सकें।

तरल उर्वरकों के महत्व

तेजी से पोषक तत्वों का अवशोषण: तरल उर्वरक जल्दी से पौधों द्वारा अवशोषित किए जाते हैं क्योंकि ये पहले से घुले हुए होते हैं। इसका मतलब है कि जब भी पौधों को तुरंत पोषण की आवश्यकता होती है, जैसे कि पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखते हैं, तो तरल उर्वरक तुरंत असर दिखाते हैं।

सटीक पोषक तत्वों की आपूर्ति : तरल उर्वरकों का एक बड़ा फायदा यह है कि इन्हें पौधों की जड़ों या पत्तियों पर सीधे लगाया जा सकता है, जिससे सटीक मात्रा में पोषक तत्व मिलते हैं। यह पौधों की सेहत और वृद्धि में सुधार करता है और पोषक तत्वों की बर्बादी को कम करता है।

समान वितरण: तरल उर्वरकों को खेतों में समान रूप से फैलाना आसान होता है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी पौधों को समान मात्रा में पोषक तत्व मिलें, जिससे फसल में एकरूपता आती है और उपज में वृद्धि होती है।

कम पोषक तत्व: नाइट्रोजन पौधों की वृद्धि और इस प्रकार फसल की उपज में एक आवश्यक भूमिका निभाता है। यह अनुमान लगाया गया है कि दानेदार उर्वरकों में 40 प्रतिशत तक नाइट्रोजन की हानि होती है, जबकि तरल उर्वरक में 10 प्रतिशत से अधिक की हानि नहीं होती है।

संभालने में आसानी: इसे सिंचाई प्रणाली का उपयोग करके लगाया जा सकता है। इससे सही एकाग्रता लागू करना भी आसान हो जाता है। इसके अलावा, आपके कार्यबल को धूल से बचाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसा कि निश्चित दानेदार उर्वरकों के मामले में है।

भंडारण करना आसान: क्योंकि इन्हें सीलबंद कंटेनरों में संकेंद्रित रूप में रखा जाता है, इसलिए भंडारण प्रक्रिया से जुड़ी चुनौतियाँ कम होती हैं। यह कम जगह घेरता है, मौसमी या पर्यावरणीय कारकों के प्रति कम संवेदनशील होता है।

सिंचाई प्रणाली के साथ संगतता: तरल उर्वरक सिंचाई प्रणाली (फर्टिगेशन) के साथ आसानी से मिलाए जा सकते हैं। इससे किसान एक ही समय में सिंचाई और उर्वरक डालने का काम कर सकते हैं, जिससे समय और श्रम की बचत होती है। इसके साथ ही, यह तरीका पानी की बचत करता है और पौधों को निरंतर पोषण उपलब्ध कराता है। इस प्रणाली में उर्वरक दक्षता में 80–90 प्रतिशत तक बढ़ोतरी होती है।

अनुकूलित मिश्रण की सुविधा: तरल उर्वरकों को विभिन्न पोषक तत्वों के साथ मिलाकर कस्टम मिश्रण तैयार किया जा सकता है, जो विशेष रूप से मिट्टी की आवश्यकता और फसल के प्रकार के अनुसार अनुकूलित हो सकते हैं। यह पौधों की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने में सहायक होता है और कृषि में पोषण असंतुलन को दूर करने में मदद करता है।

पौधों की वृद्धि : तरल उर्वरकों के माध्यम से पौधों को तुरंत आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं, जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम और सूक्ष्म पोषक तत्व, जिससे उनकी जड़ प्रणाली मजबूत होती है और उपज बढ़ती है।

महत्वपूर्ण विकास चरणों में पौधों के लिए सहायक: फूलों और फलों के बनने के महत्वपूर्ण चरणों में तरल उर्वरक पौधों को तुरंत आवश्यक पोषण प्रदान करते हैं, जिससे फसल की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में सुधार होता है।

पर्यावरण के अनुकूल विकल्प: आजकल कई जैविक तरल उर्वरक उपलब्ध हैं जो पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित होते हैं। यह उर्वरक मिट्टी को प्रदूषित नहीं करते और पोषक तत्वों के बहाव और लीचिंग की समस्या को कम करते हैं, जो कभी–कभी ठोस उर्वरकों के उपयोग से हो सकता है।

विभिन्न फसलों के लिए अनुकूलता: तरल उर्वरक सब्जियों, फलों, अनाजों, और सजावटी पौधों सहित विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए उपयुक्त होते हैं। यह उनकी बहुमुखी प्रतिभा को दर्शाता है, जिससे इन्हें कृषि में एक विकल्प के रूप में देखा जाता है।

प्रतिकूल परिस्थितियों में फसलों की सुरक्षा : तरल उर्वरक ठंडी या प्रतिकूल परिस्थितियों में फसलों की सुरक्षा में मदद कर सकते हैं। जैसे – सुखा, अधिक व कम तापमान।

पौधों की बीमारियों और कीटों को कम करना: तरल उर्वरक पौधों की बीमारियों और कीटों को कम करने में मदद कर सकते हैं।

आवश्यक खुराक कम करना: तरल उर्वरक फसलों के लिए आवश्यक उर्वरक की मात्रा को 20–25 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं।

तरल उर्वरकों का फसलों पर प्रभाव

1. धान (चावल)

धान की खेती में नाइट्रोजन युक्त तरल उर्वरक का प्रयोग किया जाता है। धान को नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि यह उसकी पत्तियों के विकास और हरेपन को बढ़ावा देता है। तरल उर्वरक का छिड़काव धान के पौधों पर किया जाता है, जिससे पौधों की जड़ें पोषक तत्वों को तेजी से अवशोषित कर सकती हैं। परिणामस्वरूप, पैदावार में वृद्धि होती है और पौधे रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त करते हैं।

2. गेहूं

गेहूं की फसल में फास्फोरस, पोटैशियम और नाइट्रोजन जैसे पोषक तत्वों की जरूरत होती है। तरल उर्वरक इन पोषक तत्वों को जड़ों के पास पहुंचाने में मदद करता है। इसके अलावा, तरल उर्वरक को सीधे पत्तियों पर छिड़का जा सकता है, जिससे पौधों को तेजी से आवश्यक तत्व मिलते हैं। इससे पौधे स्वस्थ रहते हैं और गेहूं की उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

3. सब्जियाँ (टमाटर एवं मिर्च)

टमाटर और मिर्च जैसी सब्जियों की फसलों के लिए तरल उर्वरक अत्यधिक लाभकारी होता है। इसमें पोटैशियम और कैल्शियम जैसे तत्व होते हैं जो पौधों के फलने–फूलने में सहायक होते हैं। जब तरल उर्वरक का छिड़काव किया जाता है, तो यह पौधों की कोशिकाओं को मजबूत करता है और फल के आकार और गुणवत्ता में सुधार करता है।

4. गन्ना

गन्ने की खेती में तरल उर्वरक का प्रयोग उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए किया जाता है। गन्ने को नाइट्रोजन और पोटैशियम की अधिक आवश्यकता होती है, जो तरल उर्वरक के माध्यम से सीधे उपलब्ध कराए जा सकते हैं। यह फसल की जड़ प्रणाली को मजबूत करता है और उसकी वृद्धि में तेजी लाता है।

5. धनिया

धनिया की अच्छी उपज के लिए उचित पोषण की आवश्यकता होती है, और तरल उर्वरक इस आवश्यकता को पूरा करने का एक प्रभावी तरीका है। पर्णीय छिडकाव (19:19:19 नत्रजनः फॉस्फोरस : पोटाश) 0.5 प्रतिशत फूल आने से पहले और छत्रक बनने पर अनुप्रयोग ने पौधे की ऊँचाई, पौधे का शुष्क भार, फसल की वृद्धि दर, प्राथमिक शाखाओं की संख्या/पौधा, क्लोरोफिल मात्रा और उपज विशेषताएँ और पैदावार, जैसे कि पुष्पछत्रक/पौधा, छत्रक/पुष्पछत्रक, बीज/पुष्पछत्रक, बीज भार, बीज उपज, आवश्यक तेल सामग्री, एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि आदि को सार्थक रूप से अधिक प्राप्त किया।

छत्रक बनने पर पर्णीय छिडकाव

प्रायः उपयोग किये जाने वाले तरल उर्वरक हैं:–

क्र. सं.	उर्वरक	पोषक तत्व प्रतिशत (एन.पी.के.)
1	एन.पी. के.	19:19.19
2	एन.पी. के.	12:32:16
3	एन.पी. के.	20:20:20
4	एन.पी. के.	18:18:18
5	एन.पी. के. एस.	20:20:00:13
6	एन.पी. के.	00:52:34
7	यूरिया फॉस्फेट	17:44:00
8	नाइट्रेट	13:00:45
9	मोनो अमोनियम फॉस्फेट	12:61:00
10	सल्फेट ऑफ पोटाश	00:00:50
11	एन.पी. के.	13:40:13
12	एन.पी. के.	28:28:00
13	कैल्शियम नाइट्रेट	18.5:15.5:00
14	कैल्शियम नाइट्रेट बोरोन	17:14.5::0.2

फूल आने से पहले पर्णीय छिडकाव

निष्कर्ष: तरल उर्वरक फसल उत्पादन में न केवल पोषक तत्वों की कुशल आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं, बल्कि फसलों की गुणवत्ता और उपज में भी सुधार करते हैं। इनका सही और समय पर उपयोग कृषि को और भी उत्पादक और लाभकारी बना सकता है। इसलिए, कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए तरल उर्वरकों का महत्व अनदेखा नहीं किया जा सकता।

रबी फसलों में जल उत्पादकता वृद्धि के विभिन्न आयाम

आर.एस. नारोलिया, राजेन्द्र कुमार यादव एवं किरण मीणा
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

बढ़ती जनसंख्या की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा हेतु आवश्यक फल, सब्जियों एवं दालों का अतिरिक्त उत्पादन और निरन्तर सीमित हो रही कृषि क्षेत्र एवं जल उपलब्धता आज देश की सबसे बड़ी चुनौतियाँ है। राष्ट्रीय जल संसाधन विकास योजना के अनुमानों के अनुसार वर्ष 2050 तक उपलब्ध जल संसाधन में सिंचाई का हिस्सा घटकर 79 प्रतिशत रह जायेगा। जलवायु परिवर्तनों के कारण लगातार वर्षा की मात्रा में कमी होती जा रही है। परिणामस्वरूप भूमिगत जल की मात्रा में भी कमी होने के कारण भू–जल स्तर में निरंतर गिरावट होती जा रही है। विगत कुछ में वर्षा का आंकलन करें तो राजस्थान राज्य में औसत वर्षा का स्तर घटा है और साथ–साथ उत्पादकता में भी कमी आई हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में कृषि में उत्पादन बढानें के साथ–साथ जल उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करना आज के बदलते परिवेश में अति आवश्यक हैं। जल प्रबन्धन के सन्दर्भ में जल उत्पादकता बढ़ाने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान क्रार्यक्रम का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

क्रियान्वित अनुसंधान कार्यक्रम

क्रियान्वित अनुसंधान कार्यक्रम जल प्रबन्धन की नवीनतम तकनीकियों को हस्तांतरण करने का कार्यक्रम है, इस कार्यक्रम में अखिल भारतीय समन्वित जल प्रबन्धन परियोजना के अर्न्तगत कृषि अनुसंधान केन्द्र द्वारा जल प्रबन्धन के नवीनतम अनुसंधानों को प्रदर्शनी के माध्यम से सीधे किसानों तक पहुँचाया जाता है जिससे किसान कम पानी में ज्यादा से ज्यादा उत्पादन ले सकें और अपनी आमदनी बढ़ा सकें इसके अर्न्तगत प्रथम बार किसी तकनीकी को किसानों के खेत पर परीक्षण किया जाता है बगैर राज्य कृषि विभाग की सहायता अथवा भागीदारी के इसके पीछे मूल उद्देश्य यह है कि परम्परागत रूप से जल प्रबन्धन तकनीकी स्थानान्तरण प्रक्रिया में ज्यादा समय लगता है उसमें कमी आये व तकनीकी स्थानान्तरण त्वरित रूप से हो क्योंकि परम्परागत प्रसार विधि से तकनीकी सीधे अनुसंधान फार्म से किसान के पास न जाकर राज्य कृषि प्रसार विभाग के माध्यम से जाती है और इस प्रक्रिया में देरी होने व संदेश का प्रभाव कम हो जाने का अंदेशा रहता है जबकि क्रियान्वित अनुसंधान कार्यक्रम में जल प्रबन्धन तकनीकी शीघ्र एवं प्रभावी ढंग से किसान के पास पहुंचती हैं।

क्रियान्वित अनुसंधान कार्यक्रम की विशेषताएं

1. इस कार्यक्रम में कमाण्ड और नोन कमाण्ड दोनों ही क्षेत्रों के किसान लाभान्वित होते हैं।
2. क्रियान्वित अनुसंधान कार्यक्रम के लिए किसी क्षेत्र विशेष को चयन किया जाता है और उस क्षेत्र की पूरी जाँच की जाती है जैसे मिट्टी का परीक्षण, पोषक तत्व, जल धारण क्षमता, मृदा में जल प्रवेश की दर, मृदा घनत्व, मृदा संगठन, सिंचाई के साधन आदि।
3. नहरी क्षेत्रों में विशेषकर दांई मुख्य नहर एवं बांई मुख्य नहर की किसी भी माइनर व वितरिका पर किसान हैड, मिडिल और टेल पर चयन किये जाते हैं।
4. इसमें किसी फसल विशेष को वितरिका के तीनों जगह (हैड मिडिल एवं टेल) पर टेस्ट किया जाता है इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि हैड पर किसान पानी का अपव्यय ज्यादा करते है जिससें फसल को नुकसान होता है और जिसके फलस्वरूप टेल के किसानों को पानी नही मिलता हैं।
5. किसानों के खेत में प्रदर्शन लगाने से पहले किसी फसल विशेष की जल प्रबन्धन की आधुनिक तकनीकी का एक दिवसीय प्रशिक्षण दिया जाता हैं।
6. क्रियान्वित अनुसंधान कार्यक्रम के लक्ष्य प्रक्षेत्र स्तर या कृषि वैज्ञानिकों व किसानों दोनों के लिए किए जाते हैं।
7. किसानों में जल प्रबन्धन से सम्बन्धित जागरूकता लाने के लिए परीक्षण फार्म पर लाकर अनुसंधान कार्यो को दिखाया जाता हैं।
8. किसानों को सहभागिता सिंचाई प्रबन्धन के बारे में जागरूक किया जाता हैं।
9. सिंचाई हेतु फसलों की क्रान्तिक अवस्थाओं के बारे में अवगत कराया जाता हैं।
10. कम पानी चाहने वाली किस्मों के बारे में प्रदर्शन लगाकर अवगत कराया जाता हैं।

पैदावार बढ़ाने के हेतु जल प्रबन्ध : पैदावार बढ़ानी है तो जल प्रबन्ध पर ध्यान देना जरूरी हैं। इसके लिए सिंचाई, पीने के पानी व उद्योगों में पानी को कुशलतम तरीके से उपयोग करने की आवश्यकता है। भू–जल का दोहन अधिक से अधिक किये जाने के कारण स्थिति दिनों दिन गिरती जा रही है। राजस्थान के दो–तिहाई क्षेत्र में भू–जल स्तर घट रहा है। जबकि नहरी क्षेत्र में जल स्तर बढ़ रहा है। सामान्यतया एक मीटर प्रतिवर्ष की दर से जल स्तर घट रहा है। राज्य में कम, असमान तथा अनियमित वर्षा के कारण भूमिगत जल का पुनर्भरण भू–जल के दोहन के अनुपात में कम होने के कारण भू–जल स्तर प्रतिवर्ष नीचे चला जा रहा है और किसान ट्यूबवैल को गहरा करवाता है फिर भी उसको पर्याप्त पानी नही मिल पाता है। इससे सिचांई की लागत भी बढ़ती है व पानी की गुणवत्ता भी खराब होती है।

आबादी बढ़ने के कारण पानी का घरेलू उपयोग तो काफी बढ़ा ही है, औद्योगिक विकास के फलस्वरूप पानी का काफी बड़ा हिस्सा फेक्ट्रीयों/कारखानों में काम आता है। कुल मिलाकर एक ओर जहां खेती से पैदावार बढ़ाने का सवाल है तो दूसरी ओर खेती के लिए पानी की कम उपलब्धता की चुनौति सामने है। इस चुनौति से निपटने के लिए सरकार स्तर पर प्रयास करीब एक दशक पहले से ही योजना बद्ध तरीके से प्रारम्भ कर दिये गये। जल ग्रहण विकास विभाग द्वारा राज्यभर में इस बाबत् कार्य किये जा रहे है। कृषि विभाग द्वारा फव्वारा सिंचाई, ड्रिप सिंचाई, पाईप लाइन, शुष्क खेती के उन्नत तरीके तथा कुँआ सुधार योजना के रूप में प्रयास किये गये है।

जल उपयोग दक्षता वृद्धि के उपाय: पानी बिना छिजत/नुकसान के पूरा–पूरा कुँए से खेत तक पहुंचे इसके लिए पाईप लाइन का उपयोग किया जाना चाहिए। कच्चे धोरों में 30–40 फीसदी पानी बेकार चला जाता है, पानी भाप बनकर उड़ता है तथा धोरों पर उगे खरपतवारों द्वारा भी काफी हिस्सा काम में लिया जाता है। खेत में पहुंचे पानी के सदुपयोग हेतु फव्वारा तथा बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति अत्यंत उपयोगी है। कृषि विभाग

द्वारा फव्वारा सिचांई को प्रोत्साहित करने के लिए किसानों को फव्वारा सेट खरीदने के लिए अनुदान भी उपलब्ध कराया जा रहा है। इसमें शुरू–शुरू में खर्चा जरूर आता है, परन्तु कम पानी में ज्यादा क्षेत्र सिंचाई करके 2–3 साल में ही इसकी भरपाई की जा सकती है। ऊंचे–नीचे व ढालू खेतों में भी फव्वारा सिंचाई अपनाकर जयपुर, सीकर, झुन्झुनु जैसे रेतीले इलाकों में भी किसान सफलतापूर्वक खेती कर रहे है। अब तक राज्य में बहुत ज्यादा फव्वारा सेट अनुदान से कृषकों के खेतों में स्थापित किये जा चुके है। किसान के स्तर पर इस समस्या के समाधान के लिए जल प्रबन्ध के समन्वित तौर–तरीकों को अपनाये जाने की खास जरूरत है। समन्वित तरीके अपनाकर पानी से जुड़े तीन पहलुओं पर कार्य किया जाता है। पहला है, खेत से कम से कम पानी बहकर जाये अर्थात ज्यादा से ज्यादा पानी जमीन के अन्दर जाये जिसमें लम्बे समय तक फसलों को पानी उपलब्ध हो सके तथा कुँओं के जल स्तर में बढ़ोत्तरी हो। दूसरा है, उपलब्ध पानी का अधिकतम सदुपयोग और तीसरा पहलू है, कम पानी से अधिक पैदावार अर्थात उपलब्ध पानी से प्रति इकाई पैदावार में बढ़ोत्तरी जिसको हम जल उत्पादकता कहते है।

नहरी क्षेत्रों में जल प्रबंधन

उपयुक्त सिंचाई विधि अपनाएं : ज्यादातर कृषक फसलों में परम्परागत तरीके से खेतों में सीधे ही पानी देते है जिससे पानी का असमान वितरण होता है, साथ ही पानी की अधिक आवश्यकता होती है और सिंचाई में समय भी ज्यादा लगता है व कई बार लवणीयता की भी समस्या हो जाती है। सिंचाई विधियों का चयन मुख्यतया जल की उपलब्धता, मिट्टी के प्रकार, फसल आदि कारणों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

पर्याप्त पानी उपलब्धता की स्थिति में : बॉर्डर या मेड़, पट्टी, कूंड विधि से सिंचाई करें। नहरी तंत्र में 5–8 मीटर चौडी ओर ढलान के अनुसार लम्बाई की क्यारियाँ बनाकर सिंचाई करें तथा क्यारी 80 प्रतिशत पानी से भर जाये तब हमें क्यारी में पानी को रोक देना चाहिए शेष 20 प्रतिशत भाग स्वतः ही भर जायेगा। ऐसा करने से पानी की बचत भी होगी और क्यारी के अंत में ज्यादा पानी भरने की संभावना भी कम हो जायेगी। इस प्रकार हम प्रत्येक क्यारी से 20 प्रतिशत पानी बचा कर इस पानी को टेल तक पहुँचा सकते हैं अन्यथा यह पानी व्यर्थ ही बहकर या तो ड्रेन में चला जायेगा या क्यारी में ज्यादा पानी होने पर फसल पीली पड जायेगी। अक्सर देखा जाता है कि नहरी तंत्र में टेल तक पानी या तो पहुँचता ही नही या फिर बहुत कम पहुचता है, जिससे किसान सही समय पर फसल को पानी नहीं दे पाता और उसको आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

बॉर्डर सिचाई प्रणाली

जल भराव प्रणाली

- **अपर्याप्त पानी होने पर :** फब्बारा, बूंद–बूंद सिंचाई काम में लेवें जिससे कम पानी से अधिकतम उत्पादन लिया जा सके।

फव्वारा सिंचाई प्रणाली

बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली

फसलों में सिंचाई की संवेदनशील अवस्थाएं : जैसा कि हम सभी जानते हैं कि फसलों में विभिन्न महत्वपूर्ण वृद्धि चरण होते हैं। किसी चरण पर जल की आवश्यकता अधिक होती है और जल के अभाव की विपरीत प्रतिक्रिया भी उसी अनुसार होती है। यदि जल की मात्रा सीमित हो किन्तु उसकी उपलब्धता पर नियंत्रण हो तो सिंचाई की समय सारणी बनाकर फसलों के महत्वपूर्ण वृद्धि चरणों पर सिंचाई दी जा सकती है (तालिका 1)। जैसे गेहूँ में मूलांकुर तथा पुष्पावस्था अन्य अवस्थाओं से अधिक संवेदनशील है, इसलिए इन अवस्थाओं में जल की कमी होने देने पर कम सिंचाईयों से भी अधिक उपज ली जा सकती है।

तलिका 1 : सिंचाई हेतु संवेदनशील अवस्थाएं

फसल	संवेदनशील अवस्थाएं
गेहूँ	मूलांकुर अवस्था, पुश्पावस्था एवं कल्ले फूटते समय
सरसों	पुष्पावस्था एवं फली बनते समय
चना	पुष्पावस्था तथा फली बनते समय
आलू	गाँठे बनते समय

जल–संरक्षण में किसानों की भागीदारी : जल संरक्षण के उपयुक्त सभी ऐसे उपाय हैं जिनको किसान व्यक्तिगत रूप से अपना सकते हैं। इसके साथ ही सामुदायिक स्तर पर भी जल संरक्षण उपाय किये जाने चाहिए उदाहरण के तौर पर बरसाती नालों में थोड़ी–थोड़ी दूरी पर स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री पत्थर, मूंज आदि के अवरोध बना देने से पानी रूक–रूक कर बहता है तथा मिट्टी का कटाव भी रूकता है। पानी के बहने की गति कम होने से मिट्टी का कटाव भी कम हो जाता है व जमीन में जल का रिसाव बढ़ता है। इसके फलस्वरूप क्षेत्र के जलस्तर में बढ़ोत्तरी होती है। गांव के तालाब, पोखर आदि को भी गहरा किया जाना चाहिए।

इस तरह खेती में समन्वित जल प्रबन्धन की सोच विकसित कर उसको किसान के स्तर पर लागू करके खेती से अधिक और टिकाऊ पैदावार तो प्राप्त की ही जा सकती है साथ ही अकाल जैसे आपदाओं को भी काफी हद तक टाला जा सकता है।

लो टनल तकनीक द्वारा ऑफ सीजन में सब्जियों की खेती से आय वृद्धि

खजान सिंह, पूनम फौजदार, राकेश यादव एवं मंजू मीणा
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा एवं कृषि महाविद्यालय, कोटा

सब्जियाँ विटामिन्स, लवणों, कार्बोहाइड्रेट्स तथा प्रोटीन्स का समृद्ध स्रोत होती हैं। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने, अधिक जनसँख्या वृद्धि दर होने, आहार पैटर्न बदलने एवं पैकेज्ड सब्जियों की उपलब्धता के फलस्वरूप देश में घरेलु व निर्यात आपूर्ति हेतु ताजा सब्जियों की साल भर माँग रहती है, किन्तु प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण फसल सीजन में सब्जियों की भरमार रहती है तथा ऑफ सीजन में इनके दाम आसमान छूने लगते हैं। सब्जियों का बाजार भाव फसल सीजन के शुरू एवं अंत में अधिक रहता है। सर्दी के दिनों में खुले खेतों में कम तापमान व पाले की दशा होने के कारण ग्रीष्म कालीन सब्जियाँ उगाना संभव नहीं होता है, इसलिए इन सब्जियों को पॉलिथीन टनल्स में उगाया जाता है, जहाँ इनकी बढ़वार व उपज के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। ग्रीन हाउस, लो टनल तथा हाई टनल तकनीक के प्रादुर्भाव, जिससे सब्जियों की बढ़वार हेतु तापमान एवं आर्द्रता पर नियंत्रण रहता है, सब्जियां ऑफ सीजन में उगाई जा सकती हैं। लो टनल द्वारा फसल हेतु सूक्ष्म पारिस्थितिकी में सुधार होता है और वाष्पोत्सर्जन व जल मांग में कमीं आती है, परिणामतः फसल उत्पादकता, जल उपयोग दक्षता, पोषण उपयोग दक्षता व भूमि उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है। सब्जियों की वर्ष भर खेती होने से किसान उनके उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग कर पाते हैं और उनकी आय में बढ़ोतरी होती है।

लो टनल तकनीक का सिद्धांत

1. टनल के अंदर शीतकाल में ग्रीष्मकाल के समतुल्य वातावरण की दशाएँ मिल जाती हैं जिससे गर्मी की ऋतु में उगने वाली फसलें टनल तकनीक द्वारा सर्दी की ऋतु में पैदा की जा सकती हैं।
2. खेत में बांस/लोहा/एल्युमिनियम पाइप से बनी "डी" आकृति की संरचना बनाई जाती है, जो कि पारदर्शी पॉलिथीन की शीट से ढकी होती है।
3. मृदा को भी काले रंग की पॉलिथीन शीट से ढक दिया जाता है, दिन के समय सूर्य की रोशनी पारदर्शी पॉलिथीन शीट से होकर गुजरती है और काली पॉलिथीन से ढकी हुई मृदा द्वारा अवशोषित कर ली जाती है।
4. इससे टनल के अंदर का तापमान वांक्षित स्तर तक पहुँच जाता है।
5. मृदा के ऊपर प्लास्टिक शीट के तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं :
   - यह ताप को रोकती है।
   - पानी के ह्रास को कम करती है।
   - खरपतवार वृद्धि को रोकती है।

लो टनल ढांचा

लो टनल या प्लास्टिक टनल तकनीक, खेती करने का एक आधुनिक तरीका है। लो टनल्स ग्रीन हाउस की तरह प्रभाव वाली लघुरूप सरचनाएँ होती हैं। स्टील की छड़ों, बांस या पाइप को मोड़कर अर्द्ध चन्द्राकार (आधा गोलाकार) संरचना बनाकर प्लास्टिक सीट से ढक दिया जाता है। जिसमें खेत में एक मीटर चौड़ी क्यारियां तैयार की जाती हैं तथा उन पर टपक सिंचाई हेतु लाइन फैलाकर रख दी जाती है। इन तैयार क्यारियों पर अर्द्धचन्द्राकार (आधा गोलाकार) की संरचना को लोहे के तारों द्वारा जोड़कर, 75 से 110 सें.मी ऊंचाई का ढांचा तैयार कर लिया जाता है। यह ढांचा कम लागत में तैयार हो जाता है तथा उपयोग के बाद इसके हिस्सों को अलग– अलग खोल कर अगले साल प्रयोग के लिए रखा जा सकता है। इसमें, खेत में तैयार की गई क्यारियों को प्लास्टिक की शीट से ढककर संरक्षित किया जाता है इस तकनीक से कई तरह के फायदे होते हैं:–

- इस तकनीक द्वारा अगेती सब्जियों की खेती जा सकती है, जिससे सब्जियों का अधिक भाव लेकर अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता हैं।
- पौधों की पोषक अंतर्ग्रहण एवं कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग कर प्रकाश संश्लेषण क्रिया को बढाकर फसल की उपज में वृद्धि करती है।
- स्वस्थ एवं अगेती नर्सरी लगाई जा सकती है।
- उच्च गुणवत्ता व उच्च मूल्यवान फसल की वर्षा, वायु, पाले, रोग व कीटों से सुरक्षा होती है।
- फसल विविधीकरण के अवसर तथा उच्च गुणवत्ता व स्वच्छ उत्पाद पैदा करने में सहायक है।
- जिन क्षेत्रों में खुले खेतों में सब्जी उगाना संभव न हो, वहाँ भी सब्जियों की खेती की जा सकती है, जैसे कि अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर।
- लो टनल में कीट–रोगों का खतरा कम रहता है।
- पौधों को मौसम की अनिश्चितताओं अधिक हवा, वर्षा , पाला व बर्फ से भी सुरक्षा करता है।
- लो टनल्स के अंदर का तापमान में वृद्धि होती है, मिट्टी के तापमान का नियंत्रण होता है. अंकुरण व पौध वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।
- सब्जियाँ और फल समय से पहले ही पककर तैयार हो जाते हैं।
- इस तकनीक से पानी व खाद की बचत होती है।
- गुणवत्ता में सुधार होता है। इसके अलावा मृदा संरचना में सुधार होता है तथा पक्षियों व कीटों से फसल की सरक्षा होती है।

लो टनल तकनीक से, मुख्य रूप से उच्च गुणवत्ता व उच्च मूल्यवान पौध व फसलों जैसे कि टमाटर, मिर्च, खीरा, तरबूज, करेला, लौकी, खरबूजा, मूली, बीन्स और ग्रीष्मकालीन स्क्वैश जैसी सब्जियाँ उगाई जाती हैं। इस तकनीक का इस्तेमाल ज्यादातर ज्यादा सर्दी या बारिश के मौसम में किया जाता है।

निर्माण लागत (प्रति 100 वर्ग मीटर)

क्र.सं.	विवरण	तादाद	दर (रू.)	राशि (रू.)
1	बांस	28	150/ बांस	4200
2	प्लास्टिक (120बैड)	9 किग्रा.	145/ किग्रा	1305
3	बांधने का तार	2.5 किग्रा	100/ किग्रा	250
4	विविध			2,000
	कुल राशि			7,755

नोटः निर्माण लागत प्रति प्लास्टिक टनल आकर 15 × 1.5 मीटर = रुपये 1745

खेत की तैयारी

खेत की अच्छी तरह जुताई कर पाटा लगाकर मिटटी भुरभरी बना लेनी चाहिए। तदोउपरांत एक मीटर चौड़ी 4 से 5 इंच ऊँचाई की बेड़ बना ली जाती हैं। अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 1.5–2.0 किग्रा प्रति वर्ग मी. या वर्मीकम्पोस्ट 0.5–1.0 किग्रा प्रति वर्ग मी. तथा नीम की खली 200 ग्रा प्रति वर्ग मी की दर मिटटी में मिला देते हैं।

फसल एवं संस्तुत किस्में

क्र.सं.	फसल	किस्में
1	तरबूज	अर्का श्यामा, अर्का ऐश्वर्या, अर्का माणिक, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, दुर्गापुरा लाल
2	खीरा	पूसा लॉन्ग ग्रीन, काशी नूतन (संकर)
3	शिमला मिर्च	अर्का बसंत, अर्का गौरव, अर्का मोहिनी
4	लौकी	अर्का नूतन, अर्का गंगा, अर्का बहार
5	खरबूजा	अर्का सीरी, अर्का जीत, दुर्गापुरा मधु, आर एम –43, एम एच वाई दृ 3, एम एच वाई–5, आर एम–50
6	करेला	अर्का हरित, पूसा हाइब्रिड 4, काशी उर्वशी
7	काशीफल	अर्का चन्दन, अर्का सूर्यमुखी
8	मिर्च	पूसा सदाबहार (संकर), अर्का लोहित, अर्का हरिता (संकर), अर्का मेघना (संकर), आर सी एच –1
9	तुरई	अर्का विक्रम, अर्का प्रसन
10	ककड़ी	अर्का शीतल
11	टिंडा	अर्का टिंडा, पूसा रूनक
12	टमाटर	अर्का विशेष, अर्का अपेक्षा, अर्का रक्षक, अर्का सम्राट, अर्का विकास

अन्तरशष्य एवं सिंचाई

फसल को खरपतवार रहित रखने के लिए सामान्यतः दो–तीन निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। सब्जियों की सामान एवं लगातार वृद्धि हेतु मिटटी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक होती है, अतः मौसम के अनुसार 10–15 दिन के अंतराल से सिंचाई की जाती है। शुष्क अवस्था का सब्जियों की गुणवत्ता एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

लो टनल खेती पर अनुदान

राजस्थान सरकार के कृषि विभाग द्वारा लो टनल खेती किसानों को अनुदान दिया जाता है। अनुदान प्राप्त करने के लिए प्रार्थी राजस्थान का मूल निवासी, जिसके पास स्वयं का खेत व पानी का साधन होना चाहिए। अधिकतम 1000 वर्ग मीटर तक क्षेत्र के लिए 50 प्रतिशत अनुदान देय है तथा लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिए अधिकतम 4000 वर्ग मीटर क्षेत्र हेतु 75 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है। बागवानी विभाग द्वारा प्रशासनिक स्वीकृति जारी होने के बाद ही लो टनल का निर्माण किया जा सकता है।

❋❋❋

सब्जी उत्पादन और पोषण में सूक्ष्म जीवों की भूमिका

रोनक कूड़ी, नरेश कुमार, संतोष चौधरी एवं महेश कुमार पूनिया
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

आजकल, कृषि में सूक्ष्म जीवों की भूमिका को समझना और उनका उपयोग करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है, खासकर सब्जी उत्पादन में। सूक्ष्म जीव सब्जी पोषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिनमें पोषक तत्वों का अवशोषण, मिट्टी का स्वास्थ्य और पौधों की सहनशीलता शामिल हैं। ये सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों के चक्रण में मदद करते हैं, मिट्टी की संरचना में सुधार करते हैं, और नाइट्रोजन, फास्फोरस और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता को बढ़ाते हैं। इसके परिणामस्वरूप, सूक्ष्मजीव पौधों की वृद्धि को सहनशीलता बढ़ाकर और बीमारियों को दबाकर समृद्ध करते हैं। जैव उर्वरकों जैसी टिकाऊ कृषि प्रथाओं में इनका उपयोग सिंथेटिक इनपुट्स का प्राकृतिक, पर्यावरण–अनुकूल विकल्प प्रदान करता है, जिससे स्वस्थ, पौष्टिक सब्जियों और दीर्घकालिक कृषि स्थिरता को बढ़ावा मिलता है। प्राकृतिक खेती और जैविक कृषि के विकास के साथ, सूक्ष्म जीवों की भूमिका कृषि और विशेष रूप से सब्जियों की पोषण क्षमता में महत्वपूर्ण रूप से उभर कर सामने आई है। सूक्ष्म जीवों का भूमि में और पौधों में उपस्थित होना न केवल पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखता है, बल्कि यह पोषक तत्वों के संचरण को भी बढ़ावा देता है। सूक्ष्म जीवों के बिना, मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता, पौधों का पोषण और स्वस्थ वृद्धि पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है।

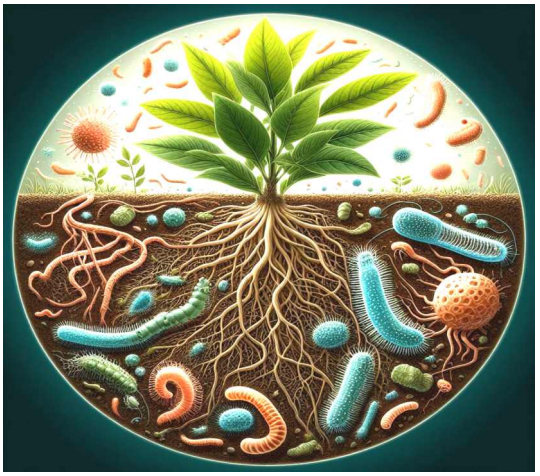

सूक्ष्म जीवों का परिचय

सूक्ष्म जीव वे जीव होते हैं जिन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी के नहीं देखा जा सकता। ये बैक्टीरिया, कवक, प्रोटोजोआ और वायरस के रूप में होते हैं, और प्राकृतिक रूप से मिट्टी, पानी और पौधों की जड़ों में पाए जाते हैं। कृषि में सूक्ष्म जीवों का उपयोग उनके द्वारा किए जाने वाले जैविक प्रक्रिया के कारण बढ़ा है, जैसे नाइट्रोजन–फिक्सेशन, पोषक तत्वों का पुनर्नवीनीकरण और मिट्टी की संरचना में सुधार।

सब्जी पोषण में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

सूक्ष्मजीव पौधों, विशेष रूप से सब्जियों, के स्वास्थ्य और पोषण में एक महत्वपूर्ण और अक्सर अनदेखी जाने वाली भूमिका निभाते हैं। जबकि उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग लंबे समय से पौधों की वृद्धि को उत्तेजित करने के लिए किया जाता रहा है, कृषि विज्ञान में सूक्ष्मजीवों के लाभकारी उपयोग ने अधिक टिकाऊ तरीकों की ओर ध्यान केंद्रित किया है। ये सूक्ष्मजीव, जो बहुत छोटे होते हैं और आमतौर पर नग्न आंखों से नहीं देखे जा सकते, सब्जी फसलों के साथ विभिन्न सहजीवी तरीकों से जुड़े होते हैं, जो पोषक तत्वों के अवशोषण, मिट्टी की संरचना में सुधार और पौधों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।

1. पोषक तत्वों का अवशोषण (Nutrient Absorption) : स्वस्थ मिट्टी सूक्ष्मजीवों से भरपूर होती है, जिसमें बैक्टीरिया, कवक, प्रोटोजोआ और निमाटोड शामिल होते हैं। ये जीव मिट्टी के पारिस्थितिक तंत्र में एक जटिल नेटवर्क बनाते हैं, जो पौधों को पोषण प्रदान करने में मदद करता है। पौधों को सही पोषण के लिए मिट्टी से विभिन्न तत्वों की आवश्यकता होती है। हालांकि, ये तत्व कभी–कभी पौधों के लिए उपलब्ध नहीं होते। सूक्ष्म जीव इन तत्वों को ऐसे रूप में परिवर्तित करते हैं जो पौधों द्वारा आसानी से अवशोषित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, राइजोबियम बैक्टीरिया अपने सहजीवी संबंधों के माध्यम से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपयुक्त रूप में बदलते हैं, जिससे पौधों को नाइट्रोजन मिलती है। इसके अलावा, कुछ स्वतंत्र रूप से रहने वाले बैक्टीरिया जैसे एजोटोबैक्टर भी नाइट्रोजन को संचित करके पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं, इस प्रकार मिट्टी की उर्वरता को बढ़ावा देते हैं।

उदाहरण: नाइट्रोजन–फिक्सिंग बैक्टीरिया: जैसे Rhizobium और Azotobacter, नाइट्रोजन को वायुमंडल से जोड़कर पौधों के लिए उपलब्ध बनाते हैं। इन बैक्टीरिया की मदद से पौधों में नाइट्रोजन का स्तर बढ़ता है, जो उनकी वृद्धि और फल–फूल में सुधार करता है। उदाहरण के लिए, मटर (Pea) और चने (Chickpea) जैसे दालों के पौधों में ये बैक्टीरिया जड़ों में रहते हैं और नाइट्रोजन को संचित करते हैं, जिससे उत्पादन बढ़ता है।

फास्फेट सॉलुबिलाइजिंग बैक्टीरिया: जैसे Bacillus और Pseudomonas, ये पौधों को फास्फोरस जैसे पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। फास्फोरस का पौधों के लिए महत्वपूर्ण योगदान होता है, खासकर फूलों और बीजों के विकास में। टमाटर (Tomato) और बैंगन (Eggplant) जैसे पौधों में ये बैक्टीरिया फास्फोरस के अवशोषण में मदद करते हैं, जिससे इनकी उपज और गुणवत्ता में सुधार होता है।

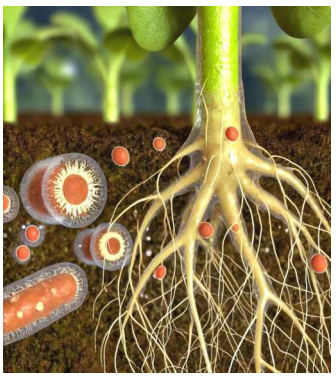

2. मिट्टी की उर्वरता में सुधार (Improving Soil Fertility) : सूक्ष्म जीवों का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाना है। जब सूक्ष्म जीव जैविक पदार्थों को तोड़ते हैं, तो वे इनसे पोषक तत्वों का निर्माण करते हैं जो मिट्टी के खनिज तत्वों को उपलब्ध कराते हैं। इस प्रक्रिया से मिट्टी की संरचना में भी सुधार होता है, जो पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। उदाहरण: माइकोराइजल कवक (Mycorrhizal Fungi) : जैसे Glomus spp- ये कवक पौधों की जड़ों से जुड़कर फास्फोरस, कैल्शियम और पोटेशियम जैसे पोषक तत्वों का अवशोषण बढ़ाते हैं। इनका मुख्य कार्य मिट्टी से इन तत्वों को पौधों तक पहुंचाना है। पत्ता गोभी (Cabbage) और ब्रोकली (Broccoli) जैसे पौधों में माइकोराइजल कवक की सक्रियता से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है, जिससे इनकी वृद्धि और उपज में वृद्धि होती है।

3. पोषक तत्वों का चक्रण और जैविक पदार्थों का विघटन: सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों के चक्रण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की पुनः उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं। जैसे–जैसे मृत पौधों के अवशेष और अन्य जैविक पदार्थ टूटते हैं, सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया और कवक उन्हें सरल रूपों में परिवर्तित करते हैं। यह विघटन प्रक्रिया नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश जैसे आवश्यक पोषक तत्वों को मिट्टी में छोड़ती है, जो बाद में पौधों द्वारा अवशोषित किए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, सैप्रोफाइटिक कवक पौधों के अवशेषों को तोड़ते हुए, उन्हें पोषक तत्वों में बदलते हैं, जिन्हें पौधे आसानी से अवशोषित कर सकते हैं। इस प्रक्रिया से जैविक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है, और फसलों के लिए पोषक तत्वों की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित होती है।

4. जैविक उर्वरक (Biofertilizers) : सूक्ष्म जीवों से बने जैविक उर्वरक रासायनिक उर्वरकों का पर्यावरणीय विकल्प होते हैं। ये पौधों को प्राकृतिक रूप से पोषक तत्व प्रदान करते हैं और मिट्टी की गुणवत्ता को बनाए रखते हैं। जैविक उर्वरक का उपयोग न केवल उत्पादन बढ़ाता है, बल्कि यह पर्यावरण को भी हानिप्रद रसायनों से मुक्त रखता है। उदाहरणः Azospirillum और Azotobacter : ये बैक्टीरिया नाइट्रोजन का संश्लेषण करते हैं और इसे मिट्टी में जमा करते हैं, जिससे नाइट्रोजन की कमी वाले क्षेत्रों में सब्जियों की वृद्धि में सुधार होता है। पालक (Spinach) और सरसों (Mustard) में इन जैविक उर्वरकों का उपयोग उपज और गुणवत्ता में सुधार करता है। Rhizobium: दालों की फसल जैसे मटर और चना में Rhizobium बैक्टीरिया की मौजूदगी इनकी उत्पादकता को बढ़ाती है क्योंकि यह नाइट्रोजन को वायुमंडल से जोड़कर पौधों के लिए उपलब्ध कराता है।

5. माइकोराइजल कवक और पोषक तत्वों का अवशोषण: सब्जियों के पोषण में एक प्रमुख सूक्ष्मजीव माइकोराइजल कवक होते हैं। ये कवक मुख्य रूप से पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं और अपने हाइफे (धागे जैसी संरचनाओं) के माध्यम से जड़ों को पोषक तत्वों तक पहुंचने में मदद करते हैं। विशेष रूप से फास्फोरस जैसे तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है, जो मिट्टी में अक्सर सीमित होते हैं। इसके अलावा, माइकोराइजल कवक अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक और तांबे के अवशोषण में भी मदद करते हैं। यह कवक न केवल सब्जियों के पोषण में सुधार करते हैं, बल्कि उनके पर्यावरणीय तनाव सहन करने की क्षमता भी बढ़ाते हैं।

6. पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया (PGPR): पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया (PGPR) भी सब्जी पोषण में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। ये बैक्टीरिया पौधों की जड़ों के चारों ओर राइजोस्फीयर (मिट्टी का वह क्षेत्र जो जड़ों के आसपास होता है) में निवास करते हैं और विभिन्न तरीकों से पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। कुछ PGPR बैक्टीरिया जैसे Pseudomonas और Bacillus ऑक्सिन जैसे हार्मोन का उत्पादन करते हैं, जो जड़ों की वृद्धि को उत्तेजित करते हैं। यह बढ़ी हुई जड़ प्रणाली पौधों को अधिक पानी और पोषक तत्वों को अवशोषित करने में सक्षम बनाती है, जिससे फसलों की उत्पादकता बढ़ जाती है।

7. रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि (Enhancing Disease Resistance): कुछ सूक्ष्म जीवों की मौजूदगी पौधों को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। ये बैक्टीरिया और कवक पौधों की रक्षा करते हैं और उन्हें हानिकारक सूक्ष्म जीवों से बचाते हैं। उदाहरणः ज्तपबीवकमतउः यह एक प्रकार का कवक है जो पौधों को विभिन्न प्रकार की फफूंद और बैक्टीरियल संक्रमण से बचाता है। यह मिट्टी में स्थित रोगजनकों से लड़ता है और पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। कद्दू (Pumpkin) और खीरा (Cucumber) जैसी सब्जियों में Trichoderma का उपयोग करने से इनकी स्वास्थ्य और उत्पादकता में सुधार होता है। Pseudomonas: यह बैक्टीरिया पौधों को फफूंदजनित रोगों से सुरक्षा प्रदान करता है। यह बैक्टीरिया आलू (Potato) और टमाटर (Tomato) जैसे पौधों में पत्तियों की झुलसने वाली बीमारियों से बचाव करता है और इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाता है।

8. पोषण गुणवत्ता में सुधार: सूक्ष्मजीव न केवल पौधों की उपज और तनाव सहनशीलता में सुधार करते हैं, बल्कि सब्जियों की पोषण गुणवत्ता पर भी सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ सूक्ष्मजीव नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के अवशोषण को बढ़ाकर सब्जियों में विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा बढ़ा सकते हैं। टमाटर जैसे फसलों में सूक्ष्मजीवों की सहायता से लाइकोपीन और विटामिन सी की मात्रा बढ़ सकती है, जिससे इनकी पोषण गुणवत्ता में सुधार होता है।

9. मिट्टी की संरचना में सुधार (Improving Soil Structure) : सूक्ष्म जीवों का एक अन्य कार्य मिट्टी की संरचना को सुधारना है, जिससे जलधारण क्षमता बढ़ती है और मिट्टी में वायु का संचार बेहतर होता है। यह पौधों की जड़ों को ऑक्सीजन प्रदान करता है और उनकी वृद्धि में मदद करता है। सूक्ष्म जीवों के कारण मिट्टी में उपस्थित जैविक पदार्थ अधिक कुशलता से टूटते हैं और पौधों के लिए आवश्यक तत्वों में बदलते हैं। उदाहरणः Compost : सूक्ष्म जीवों द्वारा बनाए गए जैविक खाद जैसे कम्पोस्ट में अत्यधिक पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व होते हैं। यह पौधों की जड़ों को अधिक पोषक तत्व उपलब्ध कराता है और मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाता है। गाजर (Carrot) और बीट (Beetroot) जैसी जड़ वाली सब्जियों में कम्पोस्ट का उपयोग मिट्टी की गुणवत्ता और जड़ की वृद्धि को बेहतर बनाता है।

10. सतत कृषि और सूक्ष्मजीवों का उपयोग: सूक्ष्मजीवों का उपयोग कृषि में टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के स्थान पर सूक्ष्मजीवों का उपयोग मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है और पर्यावरणीय प्रभाव को कम करता है। माइकोराइजल कवक और च्ळच्त् जैसे सूक्ष्मजीव प्राकृतिक तरीके से पौधों की वृद्धि को बढ़ाते हैं और जैविक खेती की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होते हैं।

निष्कर्ष

सूक्ष्म जीवों की भूमिका सब्जी पोषण में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये न केवल पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का स्रोत प्रदान करते हैं, बल्कि मिट्टी की उर्वरता, संरचना और रोग प्रतिरोधक क्षमता में भी सुधार करते हैं। इन सूक्ष्म जीवों का उपयोग कृषि में जैविक रूप से उत्पादन बढ़ाने के लिए किया जा सकता है और यह पारिस्थितिकी तंत्र के लिए भी लाभकारी है। इसलिए, सूक्ष्म जीवों का समुचित उपयोग करने से न केवल सब्जियों की गुणवत्ता और मात्रा में वृद्धि हो सकती है, बल्कि यह पर्यावरण के लिए भी सकारात्मक प्रभाव डालता है।

अनार की फसल में जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट) रोग : कारण, लक्षण और प्रबंधन के आधुनिक तरीके

मोनू कुमारी, आयुषी जैन, विशा जैन एवं हर्षित कुमार
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर-(राजस्थान) एवं चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट) रोग के प्रबंधन के लिए छह चरण कार्यक्रम उन किसानों के लिए है जो अनार की मृग बहार और पछेती मृग बहार फसल लेते हैं और जिसके कारण नुकसान का सामना कर रहे हैं। इसे सामुदायिक ष्टिकोण से लेने की आवश्यकता है एवं प्रबंधन के आधुनिक तरीको का जीवाणु झुलसा वाले इलाके के सभी किसानों द्वारा पालन किया जाए तो रोगजनक खत्म हो जाएगा और किसान वर्षा ;तु की फसल सफलतापूर्वक ले सकते हैं।

प्रबंधन के आधुनिक तरीके

1 **मुख्य छंटाई :** दिसंबर के अंत व फरवरी के मध्य में फलों की तुड़ाई के तुरंत बाद कर देनी चाहिए और सघन, क्षतिग्रस्त और सूखी शाखाओं को हटा देना चाहिए ताकि हवा एवं प्रकाश का उचित प्रसारण हो। जीवाणु झुलसा से गृसित शाखाओं को 2–4 इंच नीचे से काट कर कटे हुए भाग व मुख्य तने पर पर 10 प्रतिशत बोर्डो पेस्ट लगाना चाहिए। प्रभावित तनों और फलों को नष्ट कर देना चाहिए।

2 उर्वरको का उपयोग और रोग व कीटो से सुरक्षा पौधे की उम्र के अनुसार करें। 2 वर्ष और उससे अधिक उम्र के पौधों के लिए

(क) 20 किलोग्राम अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या 15 किलोग्राम खाद + 2 किलोग्राम वर्मीकम्पोस्ट + 1–2 किलोग्राम नीम की खली या अच्छी तरह से विघटित मुर्गी की खाद 7 किलो + 2 किलो नीम की खली प्रति पौधा।

(ख) प्रति पौधा नाइट्रोजन 205 ग्राम (446 ग्राम नीम लेपित यूरिया) + फास्फोरस 50 ग्राम (315 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट) + पोटाश 152 ग्राम (254 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश या 304 ग्राम सल्फेट ऑफ पोटाश) उपयोग करें।

(ग) रासायनिक उर्वरक डालने के 20–30 दिन बाद खाद के साथ बायोफॉर्मूलेशन डालें। एस्परजिलस नाइजर एएन 27 (IRAG07), माइकोराइजा और पेनिसिलियम पिनोफिलम जैसे बायोफॉर्म्यूलेशन 1 किलोग्राम पर एकड़ या ट्राइकोडर्मा विराइड टी. हार्जियानम, स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस, पेसिलोमाइसेस लिलासिनस का 1 किलोग्राम पर एकड उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक फॉर्मूलेशन के लिए 1 फीट ऊंची क्यारी तैयार करें और 1 किलोग्राम बायोफॉर्म्युलेशन को 1 टन अच्छी तरह सड़ी हुई खाद के साथ मिलाकर क्यारीयो में मिलाएं। इन क्यारीयो में 50–60 प्रतिशत नमी बनाए रखने के लिए इसे बोरे से ढक दें और हर 2–3 दिन में मिट्टी मिलाए और इसे 10–15 दिनों के लिए इनक्यूबेट करें तथा अन्य खादों के साथ प्रति एकड़ पौधों में 1 किलो बायोफॉर्मुलेशन डालें। प्रयोग के समय माइकोराइजा भी मिला लें। वर्ष में दो बार इन बायोफॉर्मुलेशन का उपयोग (एक बार पौधों में सुप्तावस्था की शुरुआत पर एवं दूसरा फूल आने पर) पोषक तत्वों के अवशोषण, पौधों की वृद्धि, मुरझान (उकठा) रोग की रोकथाम में एवं जैव रासायनिक प्रतिरोधकता में सुधार करने में मदद करता है।

(घ) उर्वरक डालने के बाद, हर 7–8 दिनों में हल्की (15–20 लीटर) सिंचाई शुरू करें। अनार के बगीचे को सुप्तावस्था की अवधि में 2 से 4 महीने तक रखें। पौधे में पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

(ड़) कीटनाशकों का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर किया जाना चाहिए।

(ए) कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम पर लीटर या कॉपर हाइड्रॉक्साइड 2 ग्राम पर लीटर या 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण (ताजा तैयार) जीवाणु (बैक्टीरिया) और फंगल जनित रोगों की रोकथाम करता है। फिर भी यदि कोई फफूंद जनित रोग दिखे तो मैंकोजेब या किसी अन्य फफूंदनाशक का एक या दो छिड़काव कर सकते हैं। (बी) देखे गए कीट के आधार पर आवश्यकतानुसार कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है। जैसे कीटनाशक के रूप में एजाडिरेक्टिन 1 प्रतिशत (10000 पीपीएम) 3 मिली प्रति लीटर की दर से महीने में एक बार लिया जा सकता है। यदि पत्तों पर कीटों का प्रकोप अधिक है तो निम्नलिखित में से किसी एक का छिड़काव करें– लैम्ब्डा साइहलोथ्रिन 5 प्रतिशत ईसी 0.5–0.75 मिली प्रति लीटर, इंडोक्साकार्ब 14.5 प्रतिशत एससी 0.75 मिली प्रति लीटर, सायनट्रानिलिप्रोल 0.75 मिली प्रति लीटर या थियामेथोक्साम 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी 0.5 ग्राम प्रति लीटर।

(च) उकठा और सूत्रकृमि की समस्या का सामना करने वाले किसान एनआरसीपी वेबसाइट पर विल्ट (उकठा) सलाह का पालन कर सकते हैं।

3. प्राकृतिक रूप से पत्ते झड़ने के लिए सबसे गर्म महीनों के दौरान फसल को तनाव में रखें– अनार के पौधों में 100 प्रतिशत प्राकृतिक रूप से पत्ते झड़ने के लिए मार्च के मध्य व अंत से सिंचाई बंद कर दें।

4. पत्ते रहित तनों को सौर विकिरण से उपचार– तने की गांठों में जीवाणुओं (बैक्टीरिया) को मारने के लिए फसल शुरू होने से पहले 15–20 दिनों के लिए पत्ते रहित नग्न तनों को सौर विकिरण में उजागर करें (यह बैक्टीरिया ब्लाइट रोगजनक को खत्म करने के लिए नवीनतम महत्वपूर्ण कदम है)। इस अवधि की गंभीरता से निगरानी करें। जैसे ही तने 1–2 सेमी सूखने लगें, पहली सिंचाई कर देनी चाहिए और किसान को 20 दिनों तक इंतजार नहीं करना चाहिए।

5. हल्की छंटाई और उर्वरक प्रयोग– शीर्ष 8–10 इंच की शाखाओं की हल्की छंटाई करें। जैसा कि ऊपर बताया गया है, गृसित शाखाओं को काट कर कटे हुए भाग व मुख्य तने पर पर 10 प्रतिशत बोर्डो पेस्ट लगा दें।

उर्वरक और एकीकृत कीट और रोग प्रबंधन (आईडीआईपीएम) का पालन करें–

(क) अनार के पौधों में अनुशंसित उर्वरकों के साथ ह्यूमिक एसिड और सल्फर 80 प्रतिशत 20–30 ग्राम प्रति पौधा डालें (यदि मिट्टी का पीएच 8 से ऊपर है तो 30 ग्राम प्रति पौधा उपयोग करें)।

(ख) रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के 20–30 दिन बाद बायोफॉर्मूलेशन एस्परगिलस नाइजर का प्रयोग करें, माइकोराइजा (राइजोफैगस इररेगुलेरिसग्लोमस इररेगुलेरिस),1 किलोग्राम पर एकड और पेनिसिलियम पिनोफिलम 1 किलोग्राम पर एकड़। ट्राइकोडर्मा विराइड या टी. हार्जियानम, स्यूडोमोनास फ्लोरोसेन्स 1 किलोग्राम पर एकड. का उपयोग करें।

(ग) फूल आने से पहले की अवस्था से 1 महीने के अंतराल पर 2 ग्राम पर लीटर की दर से सूक्ष्म पोषक तत्व मिश्रण और 300 पीपीएम की दर से सैलिसिलिक एसिड (100 लीटर में 30 ग्राम) के 4 छिड़काव करें।

(घ) गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए खेत की आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित कवकनाशी और कीटनाशकों का 7–10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

(ड़) यदि खेत सूत्र मि से संक्रमित है, तो फसल की शुरुआत में मिट्टी को फ्लुओपाइरम 38.48 प्रतिशत एससी 2 मिली लीटर पर पौधा या फ्लुएनसल्फोन 2 प्रतिशत जीआर 10 ग्राम पर ड्रिपर (अधिकतम खुराक 40 ग्राम पर पौधा से अधिक नहीं होनी चाहिए) से ड्रेंचिंग करें।

(च) फलों की तुड़ाई तब करें जब वे पक कर परिपक्व हो जाएं।

चरण 1 : मुख्य कटाई छंटाई (प्रूनिंग) : दिसंबर से फरवरी तक फलों की कटाई छंटाई के बाद, जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट) कैंकर वाली द्वितीयक और तृतीयक शाखाओं को हटाकर मुख्य छंटाई कर देनी चाहिए। सभी जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट) प्रभावित तनों और फलों को नष्ट या सड़ने के लिए मिट्टी में दबा देना चाहिए।

चरण 2 : सुप्तावस्था अवधि : मुख्य छंटाई के बाद सुप्तावस्था की अवधि में दिये जाने वाले उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। और रोगों एवं कीटों से फलों को बचाने के लिए नियमित अंतराल पर कीटनाशकों का छिड़काव करें।

चरण 3 : पौधों में तनाव : अनार के पौधों में 100 प्रतिशत प्राकृतिक रूप से पत्ते झड़ने के लिए मार्च के मध्य व अंत से सिंचाई बंद कर दें।

चरण 4 : पत्ते रहित तनों को सौर विकिरण से उपचार : तने की गांठों में जीवाणुओं (बैक्टीरिया) को मारने के लिए फसल शुरू होने से पहले 15–20 दिनों के लिए पौधों के पत्ते रहित तनों को सौर विकिरण में उजागर करें (यह बैक्टीरिया ब्लाइट रोगजनक को खत्म करने के लिए नवीनतम महत्वपूर्ण कदम है)। इस अवधि की गंभीरता से निगरानी करें। जैसे ही तने 1–2 सेमी सूखने लगें, पहली सिंचाई कर देनी चाहिए और किसान को 20 दिनों तक इंतजार नहीं करना चाहिए।

चरण 5 : हल्की छंटाई और उर्वरक प्रयोग : शीर्ष 8–10 इंच की शाखाओं की हल्की छंटाई करें। जैसा कि ऊपर बताया गया है, रोग गृसित शाखाओं को काट कर कटे हुए भाग व मुख्य तने पर पर 10 प्रतिशत बोर्डो पेस्ट लगा दें।

अनार में बैक्टीरियल ब्लाइट रोग के लक्षण–

(क) नई पत्तियों पर तैलीय धब्बे।
(ख) नई शाखा पर जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट)
(ग) नए फलों पर तैलीय धब्बे।
(घ) झुलसा संक्रमण के कारण फलों का टूटना।

अनार के जीवाणु झुलसा (बैक्टीरियल ब्लाइट) रोग प्रबंधन के पाँच चरण–

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

मसालों की खेती में प्रमुख चुनौतियाँ एवं रोकथाम संबंधी उपाय

आयुषी जैन, मोनू कुमारी, सुनील एवं विशा जैन
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
एवं स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

मसालों की खेती–भारत विभिन्न प्रकार के मसालों का घर है और विश्व मसाला उत्पादन में प्रमुख स्थान रखता है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा मसालों का उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक है क्योंकि लगभग सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में कोई न कोई मसाला उगाया जाता है। क्योंकि यहां उष्णकटिबंधीय से लेकर उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण जलवायु परिस्थितियों में व्यापक विविधताएं हैं, जो सभी मसालों के उत्पादन में लाभकारी हैं। खनिज उर्वरकों का अत्याधिक उपयोग मृदा में खनिज यौगिक जो मृदा की लवणता और क्षारीयता को बढ़ा रहे हैं, जिससे मृदा के लाभकारी सूक्ष्मजीव कम हो रहे हैं। हानिकारक कीड़ों, कीटों और खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए पौध संरक्षण रसायनों और खरपतवारनाशकों का उपयोग काफी बढ़ गया है। लंबी अवधि तक इन कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग मृदा की जैव विविधता और कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र में लाभकारी सूक्ष्म जीवों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

मसालों की खेती में आने वाली प्रमुख चुनौतियाँ

- बेमौसम बारिश और बारिश में अनियमितता।
- कृषि में रसायनों का अधिकतम उपयोग।
- पिछले कुछ दशकों में खनिज उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग ने कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र में भूमि और पानी को खराब कर दिया है।
- रासायनिक कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग।
- उत्पादकता में कमी के साथ–साथ उपज की गुणवत्ता में भी कमी।
- सिंचाई जल की उपलब्धता में कमी।
- जल संसाधनों के दूषित होने से जल की गुणवत्ता में गिरावट।
- अनिश्चित कीमतें।
- किसानों में जागरूकता की कमी और बाजार तक सीमित पहुंच।

किसानों द्वारा अपनाई जाने वाली वर्तमान कार्य प्रणाली टिकाऊ नहीं हैं

- कीटनाशकों एवं उर्वरकों का अंधाधुंध उपयोग
- सिंचाई और जल प्रबंधन के परंपरागत तरीके
- फसल कटाई के बाद अनुचित भंडारण।

अस्थिर कृषि पद्धतियाँ : जैसे जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि, मृदा क्षरण, मिट्टी और पानी के प्रदूषण जैसे वैश्विक मुद्दों पर अतिरिक्त दबाव पैदा करती हैं। इस प्रकार, विकास के प्रयासों का एक बड़ा हिस्सा छोटे और सीमांत भूमि वाले किसानो की ओर निर्देशित करने की आवश्यकता है, जो हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र पर प्रभुत्व रखता हैं।

जैविक खेती : जिसका मुख्य उद्देश्य इस तरह से फसल उगाना है, जो पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवो (जैव उर्वरको) के साथ–साथ खेत के कचरे और अन्य जैविक सामग्रियों के उपयोग से मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखता है। पर्यावरण–अनुकूल प्रदूषण–मुक्त वातावरण में टिकाऊ उत्पादन बढ़ाने के लिए फसलें अधिक सटीक रूप से, टिकाऊ कृषि, कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों जैसे बाहरी कारकों पर निर्भर होने के बजाय कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र के प्रबंधन पर आधारित होती है।

यह विधिया बहुत फायदेमन्द हैं क्योंकि इसमें उपज गुणवत्ता में कमी किए बिना फसलों की सुरक्षा के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। इसमें सरल और विश्वसनीय तरीकें शामिल हैं जिन्हें छोटे और सीमांत किसान अपनी उपज और लाभप्रदता बढ़ाने के लिए अपना सकते हैं। सतत कृषि में निम्नलिखित सिद्धांत शामिल हैं–

मिट्टी की संरचना और मिट्टी की उर्वरता का निर्माण : मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने के लिए अंतरफसल, मिश्रित फसल और फसल चक्र अपनाये। मृदा में जैविक कार्बन और सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक बायोमास का पुनर्चक्रण और खाद, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद, जीवामृत, जैव उर्वरको का उपयोग।

मृदा और पानी का संरक्षण : मृदा और जल संरक्षण के उपायों को अपनाना जैसे खेत की मेड़, खाइया, सूक्ष्म सिंचाईं आदि।

जल की गुणवत्ता : उपसतह के जल को प्रदूषित होने से बचाने के लिए कम से कम कृषि रसायनों का उपयोग करे।

रोकथाम–संबंधी उपाय

- मृदा सौरीकरण ।
- पानी के जमाव से बचने के लिए खेत में उचित जल निकासी की व्यवस्था करना
- ट्रैपक्रॉप को फसल के चारों तरफ लगाना।
- जैविक फॉर्मूलेशन के साथ लाभकारी सूक्ष्मजीवो और कवको से बीज उपचार करे जो पौधों के बेहतर अंकुरण और विकास में मदद करते हैं
- बुआई के 30, 60 और 90 दिन बाद जीवामृत, पंचगव्य और अमृतपानी का छिड़काव

उपचारात्मक उपाय

- नीम आधारित, दशपर्णी अर्क, अमृतपानी जैव कीटनाशकों का उपयोग
- रासायनिक कीटनाशकों का सिमित सीमा के भीतर उचित मात्रा में न्यूनतम उपयोग।

ये सभी प्रकार की तकनीकें बहुत फायदेमन्द हैं और छोटे और सीमांत किसानों द्वारा कम से कम लागत के साथ अपनी फसल उत्पादकता सुनिश्चित करते हैं।

खेत में जैव विविधता को बढ़ाना

- हरी खाद और जैविक खाद के प्रयोग से मिट्टी की जैव विविधता बढ़ेगी
- अंतरफसल, मिश्रित फसल, ट्रैपक्रॉप और सीमावर्ती फसलों का उपयोग
- पक्षियों के बैठने के स्थान, मधुमक्खी पालन आदि की व्यवस्था।
- खनिज उर्वरकों, कीटनाशकों जैसे कृषि रसायनों के उपयोग से बचें।
- पशुधन और फसल उत्पादन प्रणाली का एकीकरण, ताकि पशुधन अपशिष्टों को प्रभावी ढंग से खाद के रूप में उपयोग किया जा सके।
- किसानों की अतिरिक्त आय बढ़ाने और फसलों की खेती की लागत को कम करने के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली महत्वपूर्ण हैं।

चिरौंजी एक पौष्टिक भोजन विकल्प

रूपा उज्ज्वल
उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

चिरौंजी या चारोली जिसे बुकानानिया लैनजन के नाम से भी जाना जाता है। कृषि वानिकी और सामाजिक वानिकी का एक उत्कृष्ट वृक्ष है। बंजर भूमि विकास और शुष्क भूमि बागवानी में इसके विविध उपयोगों और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों को झेलने की क्षमता के कारण इसका बहुत महत्व है। वर्तमान में यह एक कम उपयोग किए जाने वाले फल के रूप में वनों में उग रहा है और देश के आदिवासी समुदाय को मौद्रिक लाभ देता है और उनके लिए वरदान साबित होता है। यह पूर्वी हिमालयी जंगलों को छोड़कर पूरे देश में शुष्क पर्णपाती जंगलों में पाई जाने वाली एक मूल्यवान प्रजाति है पके फल का गूदा बहुत स्वादिष्ट होता है और इसे बड़े पैमाने पर कच्चा या भूनकर खाया जाता है और तैलीय गिरी सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होती है और इसका उपयोग हलवा बनाने में किया जाता है। फल का मध्य भाग खाने योग्य होता है और बच्चों को बहुत पसंद आता है। चिरौंजी के गूदे से बहुत अच्छा जूस तैयार किया जा सकता है।

पोषण प्रोफाइल : अपनी पाक कला में बहुमुखी प्रतिभा के अलावा चिरौंजी को इसके समृद्ध पोषण संबंधी गुणों के लिए भी जाना जाता है। जो इसे आहार में एक मूल्यवान घटक बनाता है। यहाँ चिरौंजी के पोषण संबंधी गुणों और इसके घटकों के स्वास्थ्य–प्रचार गुणों में योगदान के बारे में विस्तार से बताया गया है।

मैक्रोन्यूट्रिएंट्स

प्रोटीन : चिरौंजी के बीज पादप–आधारित प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत हैं। जो ऊतकों की मरम्मत, प्रतिरक्षा कार्य का समर्थन करने और समग्र वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं।

वसा : इनमें स्वस्थ वसा भरपूर मात्रा में होती है। जिसमें असंतृप्त वसा अम्ल भी शामिल हैं जो हृदय, स्वास्थ्य मस्तिष्क की उत्तेजना और सूजन को कम करने के लिए अच्छे होते हैं।

कार्बोहाइड्रेट : चिरौंजी में मध्यम मात्रा में कार्बोहाइड्रेट होते हैं। जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इन कार्बोहाइड्रेट में आहार और फाइबर की मौजूदगी पाचन स्वास्थ्य में सहायता करती है। नियमित मल त्याग को बढ़ावा देती है और तृप्ति में योगदान देती है।

विटामिन : चिरौंजी के बीज के लाभ को विभिन्न विटामिनों के रूप में देखा जा सकता है जो शरीर में सकारात्मक कार्य करते हैं।

विटामिन बी, थायमिन ग्लूकोज उपापचय के लिए आवश्यक है। यह ऊर्जा उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विटामिन बी, राइबोफ्लेविन ऊर्जा उत्पादन में सहायता करता है तथा स्वस्थ आंखों और त्वचा के रखरखाव में योगदान देता है।

विटामिन सी यह एक एंटीऑक्सीडेंट के रूप में कार्य करता है जो प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है। यह पौधे आधारित खाद्य पदार्थों से आयरन के अवशोषण में भी मदद करता है। इसके अलावा एंटीऑक्सीडेंट गुणों के साथ चिरौंजी त्वचा को भी लाभ पहुंचाती है।

खनिज : इसके बीजों में खनिज भी भरपूर मात्रा में होते हैं जो शारीरिक कार्यों को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कैल्शियम : हड्डियों के स्वास्थ्य, तंत्रिका संचरण, मांसपेशियों के कार्य और रक्त के थक्के के लिए महत्वपूर्ण है।

फास्फोरस : कैल्शियम के साथ मिलकर हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाने के लिए अच्छा है तथा ऊर्जा उपापचय में आवश्यक है।

आयरन : हीमोग्लोबिन के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है जो रक्त में ऑक्सीजन ले जाता है ऊर्जा के स्तर और समग्र जीवन शक्ति का समर्थन करता है।

एंटीऑक्सीडेंट : चिरौंजी के बीजों में एंटीऑक्सीडेंट होते हैं जो ऑक्सीडेटिव तनाव से लड़ते हैं और शरीर में सूजन को कम करते हैं। इसलिए चिरौंजी फेस पैक त्वचा के लिए फायदेमंद माने जाते हैं। ये एंटीऑक्सीडेंट सेलुलर क्षति से बचाते हैं पुरानी बीमारियों को रोकते हैं और समग्र स्वास्थ्य का समर्थन करते हैं।

आहार फाइबर : चिरौंजी में मौजूद फाइबर की मात्रा पेट को स्वस्थ रखने पाचन में सहायता करने और कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करती है। यह पेट भरा होने का एहसास देकर वजन प्रबंधन में प्राथमिक भूमिका निभाता है जिससे कुल कैलोरी का सेवन कम होता है।

स्वास्थ्यवर्धक वसा : बीज विशेष रूप से अपने स्वास्थ्यवर्धक वसा की सामग्री के लिए जाने जाते हैं जिसमें लिनोलिक एसिड शामिल है एक आवश्यक फैटी एसिड जिसे शरीर संश्लेषित नहीं कर सकता है। ये वसा स्वस्थ कोलेस्ट्रॉल के स्तर को बनाए रखने में मदद करके हृदय स्वास्थ्य का प्रबंधन करते हैं।

स्वास्थ्य के लिए चिरौंजी के फायदे : चिरौंजी में भरपूर मात्रा में पोषक तत्व होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए बहुत से लाभ प्रदान करते हैं। यहाँ विस्तार से बताया गया है कि चिरौंजी के बीज आपके संपूर्ण स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती को कैसे लाभ पहुँचा सकते हैं।

पाचन स्वास्थ्य को बढ़ावा दें : चिरौंजी के बीज आहार फाइबर का एक अच्छा स्रोत हैं जो स्वस्थ पाचन तंत्र को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। फाइबर मल त्याग को नियमित करने, कब्ज को रोकने और स्वस्थ आंत को बढ़ावा देने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त फाइबर लाभकारी आंत बैक्टीरिया के विकास में सहायता करता है जो समग्र पाचन स्वास्थ्य और कल्याण में योगदान देता है।

त्वचा के स्वास्थ्य को बढ़ाता है : चिरौंजी के त्वचा के लिए लाभ पारंपरिक रूप से पहचाने जाते हैं। एंटीऑक्सीडेंट और आवश्यक फैटी एसिड से भरपूर चिरौंजी के बीज त्वचा को पोषण देने में मदद करते हैं। जिससे यह चिकनी और अधिक चमकदार बनती है। त्वचा को गोरा करने के लिए चिरौंजी के सभी लाभों की व्यापक रूप से प्रशंसा की जाती है। चिरौंजी के बीजों से निकाले गए तेल का उपयोग विभिन्न त्वचा संबंधी स्थितियों जैसे कि मुंहासे, दाग–धब्बे और रूखी त्वचा के इलाज के लिए किया जा सकता है। इसके मॉइस्चराइजिंग गुण त्वचा को हाइड्रेट रखने और उम्र बढ़ने के संकेतों को कम करने में मदद करते हैं।

हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है : चिरौंजी असंतृप्त वसा अम्लों का खजाना है जो हृदय स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है। ये वसा रक्त में खराब कोलेस्ट्रॉल, एलडीएल के स्तर को कम करने और अच्छे कोलेस्ट्रॉल एचडीएल को बढ़ाने में मदद करते हैं जिससे धमनियों में प्लाक का निर्माण रुकता है और हृदय रोगों का खतरा कम होता है।

मधुमेह प्रबंधन का समर्थन करता है : चिरौंजी के बीज रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायता करके मधुमेह के प्रबंधन में भूमिका निभा सकते हैं। चिरौंजी में मौजूद फाइबर रक्तप्रवाह में शर्करा के अवशोषण को धीमा कर देता है और रक्त शर्करा के स्तर को स्थिर बनाए रखता है। यह मधुमेह से पीड़ित लोगों के आहार में इसे शामिल करने के लिए लाभकारी है।

प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है : चिरौंजी के बीज विटामिन और खनिजों से भरपूर होते हैं जो प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। चिरौंजी के एंटीऑक्सीडेंट गुण मुक्त कणों से लड़ने ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने और संक्रमण और बीमारियों के खिलाफ शरीर की प्राकृतिक रक्षा तंत्र का समर्थन करने में मदद करते हैं।

हड्डियों के स्वास्थ्य में सुधार करता है : चिरौंजी के बीज कैल्शियम और फास्फोरस का अच्छा स्रोत हैं। ये खनिज हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। चिरौंजी का नियमित सेवन हड्डियों के घनत्व को बेहतर बनाने में योगदान दे सकता है और ऑस्टियोपोरोसिस जैसी हड्डियों से संबंधित बीमारियों की रोकथाम में मदद कर सकता है।

वजन प्रबंधन में सहायक : चिरौंजी के बीजों में मौजूद उच्च फाइबर सामग्री उन्हें वजन प्रबंधन में एक उत्कृष्ट सहायक बनाती है। फाइबर परिपूर्णता की भावना को बढ़ावा देता है। स्वस्थ वजन बनाए रखने की संभावना को कम करता है और सहायता करता है। भोजन में चिरौंजी को शामिल करने से वजन घटाने के लक्ष्यों को प्राप्त करने और बनाए रखने में मदद मिल सकती है

चिरौंजी सेवन करने के तरीके : यहां चिरौंजी का सेवन करने के कुछ सरल और औपचारिक तरीके बताए गए हैं। जिसे हम अपने दैनिक आहार का हिस्सा बना सकेंगे।

1. गार्निश के रूप में
2. करी और ग्रेवी में
3. बेक्ड उत्पादों में
4. नाश्ते के रूप में
5. स्मूदी और मिल्कशेक में
6. चावल के व्यंजनों में
7. सलाद ड्रेसिंग में

नागौरी पान मेथी (कसूरी मेथी) का महत्व

रोनक कूड़ी, नरेश कुमार, संतोष चौधरी एवं महेश कुमार पूनिया
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

परिचय : नागौरी पान मेथी, जिसे कसूरी मेथी के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय रसोई और चिकित्सा पद्धतियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके पत्तों से एक विशिष्ट खुशबू आती है, जो इसे अन्य मसालों और औषधीय पौधों से अलग बनाती है। कसूरी मेथी का उपयोग न केवल भोजन में स्वाद और सुगंध बढ़ाने के लिए किया जाता है, बल्कि इसका आयुर्वेदिक और औषधीय महत्व भी बहुत अधिक है।

नागौरी पान मेथी के औषधीय गुण

नागौरी पान मेथी में प्रचुर मात्रा में फाइबर, प्रोटीन, विटामिन और खनिज पाए जाते हैं, जो इसे एक पोषण से भरपूर पौधा बनाते हैं। इसके औषधीय गुण निम्नलिखित हैं:

1. **पाचन में सुधार:** नागौरी पान मेथी का सेवन पाचन तंत्र के लिए बहुत लाभकारी माना जाता है। यह अपच, पेट दर्द और गैस जैसी समस्याओं से राहत दिलाने में मदद करती है।

2. **मधुमेह नियंत्रक:** नागौरी पान मेथी के बीजों और पत्तों का नियमित सेवन रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में मदद करता है। यह मधुमेह रोगियों के लिए विशेष रूप से फायदेमंद हो सकता है।

3. **कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण:** यह शरीर में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करती है, जिससे हृदय संबंधी समस्याओं का खतरा कम हो जाता है। कसूरी मेथी में घुलनशील फाइबर की उच्च मात्रा होती है, जो खराब कोलेस्ट्रॉल (LDL) को कम करती है।

4. **त्वचा और बालों के लिए फायदेमंद:** नागौरी पान मेथी के बीजों और पत्तों का उपयोग त्वचा और बालों की समस्याओं के इलाज में भी किया जाता है। इसके पत्तों का पेस्ट चेहरे पर लगाने से त्वचा की चमक बढ़ती है और बालों में इसका उपयोग बालों को स्वस्थ और चमकदार बनाता है।

5. **सूजन और दर्द से राहत:** आयुर्वेद में कसूरी मेथी का उपयोग सूजन और जोड़ों के दर्द से राहत पाने के लिए किया जाता है। यह गठिया जैसे रोगों में भी उपयोगी साबित होती है।

6. **खाद्य उपयोग :** नागौरी पान मेथी का उपयोग भारतीय भोजन में स्वाद और सुगंध बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग सब्जियों, पराठों, दालों और मसालेदार व्यंजनों में किया जाता है। यह स्वाद में थोड़ा कड़वा होता है, लेकिन इसकी महक बहुत तीव्र होती है, जिससे यह भोजन को एक अलग और अनूठा स्वाद प्रदान करता है।

खेती और उत्पादन

नागौरी पान मेथी की खेती बहुत ही सरल होती है और यह विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है। इसके लिए अच्छी धूप और जल निकासी वाली मिट्टी की आवश्यकता होती है। भारत में इसके उत्पादन के लिए राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश प्रमुख राज्य हैं। इसकी खेती आमतौर पर सर्दियों में की जाती है और इसकी पत्तियां जल्दी बढ़ती हैं, जो इसे अल्पकालिक फसल बनाती हैं।

नागौरी पान मेथी का घरेलू उपयोग

1. इसके बीज और पत्तों का पेस्ट बनाकर चेहरे पर लगाने से मुंहासों और त्वचा की अन्य समस्याओं से राहत मिलती है।
2. इसके पत्तों को सुखाकर और पीसकर मसालों में मिलाकर सब्जियों और व्यंजनों में प्रयोग किया जाता है।
3. बालों के लिए इसके बीजों का तेल बनाने के लिए बीजों को नारियल तेल में उबालकर प्रयोग किया जा सकता है।

निष्कर्ष

नागौरी पान मेथी या कसूरी मेथी भारतीय समाज में न केवल एक महत्वपूर्ण मसाला है, बल्कि इसके औषधीय गुण भी इसे अद्वितीय बनाते हैं। पाचन सुधारने, मधुमेह नियंत्रण करने, और त्वचा व बालों की देखभाल में इसका महत्व अद्वितीय है। इसका उपयोग सदियों से भारतीय संस्कृति का हिस्सा रहा है और इसके लाभ आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं।

बायोगैस का उत्पादन: सूक्ष्मजीव

आशा कुमारी, विकास शर्मा एवं ए. के. शर्मा
कृषि महाविद्यालय, बीकानेर, एस. के. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर-334006

परिचय : बायोगैस सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पादित गैसों का मिश्रण है। यह ऊर्जा का एक नवीकरणीय स्रोत है। मीथेन बायोगैस मिश्रण में मौजूद प्रमुख गैस है। कुछ बैक्टीरिया अवायवीय परिस्थितियों में बढ़ते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड और हाइड्रोजन के साथ बड़ी मात्रा में मीथेन का उत्पादन करते हैं। गैसीय मिश्रण उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को सामूहिक रूप से मिथेनोजेन्स के रूप में जाना जाता है। मेथनोबैक्टीरियम एक ऐसा मेथनोजन है। मेथनोबैक्टीरियम मवेशियों के रूमेन और सीवेज उपचार के दौरान उत्पन्न कीचड़ के अंदर मौजूद होता। मवेशियों के भोजन में मौजूद मेथनोबैक्टीरियम मौजूद सेल्युलोज को पचाता है। मवेशियों द्वारा उत्पादित गोबर में ये मिथेनोजेन होते हैं जिनका उपयोग बायोगैस के उत्पादन के लिए किया जा सकता है जिसे गोबर गैस भी कहा जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में मवेशियों का गोबर बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध होता है। इसलिए बायोगैस संयंत्र ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक मिलते हैं। उत्पादित बायोगैस का उपयोग प्रकाश और खाना पकाने के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। बायोगैस संयंत्र में कुछ सूक्ष्मजीवों की गतिविधि से कचरे का ऊर्जा में रूपांतरण होता है।

बायोगैस संयंत्र: बायोगैस संयंत्र में फीडस्टॉक की आपूर्ति के लिए एक स्रोत, बायोगैस उत्पादन के लिए एक पाचन टैंक, उत्पादित बायोगैस को अलग करने के लिए एक बायोगैस रिकवरी इकाई और डाइजेस्टर के तापमान को बनाए रखने के लिए एक हीट एक्सचेंजर होता है। बायोवेस्ट और गोबर के घोल को एनारोबिक डाइजेस्टर में डाला जाता है। घोल को तैरते हुए ढक्कन से ढक दिया जाता है। सूक्ष्मजीवी गतिविधि के कारण उत्पन्न गैस आवरण को ऊपर की ओर उठा देती है। उत्पादित बायोगैस को जुड़े हुए पाइपों के माध्यम से संबंधित स्थानों पर आपूर्ति की जाती है और इसका उपयोग खाना पकाने और प्रकाश व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। प्रयुक्त घोल को एक आउटलेट के माध्यम से हटा दिया जाता है और बाद में उर्वरक के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

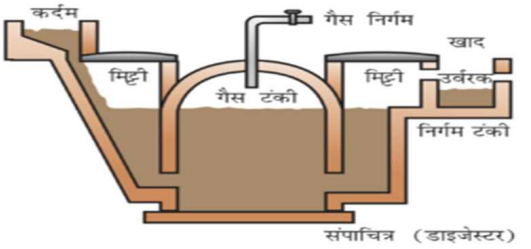

संपाचित्र (डाइजेस्टर)

भारत में बायोगैस परंपरागत रूप से फीड स्टॉक के रूप में डेयरी खाद पर आधारित रही है और ये ''गोबर'' गैस संयंत्र लंबे समय से चल रहे हैं, खासकर ग्रामीण भारत में। पिछले 2–3 दशकों में, ग्रामीण ऊर्जा सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करने वाले अनुसंधान संगठनों ने सिस्टम के डिजाइन को बढ़ाया है जिसके परिणामस्वरूप दीनबंधु मश्वडल जैसे नए कुशल कम लागत वाले डिजाइन सामने आए हैं। दीनबंधु मॉडल भारत में लोकप्रिय एक नया बायोगैस–उत्पादन मश्वडल है। (दीनबंधु का अर्थ है ''असहाय का मित्र'') इकाई की क्षमता आमतौर पर 2 से 3 घन मीटर होती है। इसका निर्माण ईंटों का उपयोग करके या फेरोसीमेंट मिश्रण द्वारा किया जाता है। भारत में, ईट मॉडल की लागत फेरोसीमेंट मॉडल से थोड़ी अधिक है। हालाँकि, भारत का नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय प्रति मॉडल निर्माण पर कुछ सब्सिडी प्रदान करता है।

लैंडफिल में बायोगैस उत्पादन: बायोगैस संयंत्र के अलावा, बायोगैस का उत्पादन लैंडफिल में भी किया जाता है। कार्बनिक पदार्थ स्वाभाविक रूप से लैंडफिल के अंदर, यानी भूमि में एक गड्ढे के अंदर विघटित हो जाते हैं, और रोगाणुओं की गतिविधि से बायोगैस का उत्पादन होता है। जैविक कचरे में मौजूद मेथनोबैक्टीरिया कचरे को विघटित करता है और गैसों का मिश्रण उत्पन्न करता है जिसे बायोगैस के रूप में जाना जाता है। उत्पादित गैस को एकत्रित करने के लिए लैंडफिल में परस्पर जुड़े पाइपों का एक नेटवर्क होता है। गैस की संरचना एक निश्चित समय अंतराल के बाद बदलती रहती है। एक वर्ष के बाद, मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड की संरचना क्रमशः 60 और 40 प्रतिशत है। यह विधि इस तथ्य के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर रही है कि यह लैंडफिल के अंदर मीथेन के संग्रह के कारण होने वाले विस्फोट को रोकती है और वातावरण में मीथेन के नुकसान को भी रोकती है। इस प्रकार उत्पादित बायोगैस का उपयोग बिजली बनाने के लिए किया जाता है।

बायोगैस के घटक

क्रमश	घटक	प्रतिशत
1	मीथेन	60
2	कार्बन डाइऑक्साइड	40
3	हाइड्रोजन	0–1
4	हाइड्रोजन डाइ सल्फाइड	0–0.5
5	नाइट्रोजन	0–10
6	ऑक्सीजन	0–2.5

बायोगैस उत्पादन में आवश्यक सबस्ट्रेट्स

1	पशु अपशिष्ट	गाय, भैंस, बकरी, भेड़, बूचड़खानों का गोबर और मूत्र
2	सह–उत्पाद	तम्बाकू अपशिष्ट, खोई, चोकर
3	जलीय पौधों	शैवाल, जलकुंभी
4	फसल अवशेष	भूसा, चारा, खरपतवार, फसल के ठूंठ, कपास और जूट की छड़ें
5	वन अवशेष	शाखाएँ, पत्तियाँ, टहनियाँ, छाल
6	शहरी ठोस अपशिष्ट	कागज, घरेलू कचरा

बायोगैस के लाभ

1. बायोगैस ऊर्जा का एक सुरक्षित, सस्ता, नवीकरणीय स्रोत है।
2. गर्मी प्रदान करने के लिए बायोगैस को स्टोव में जलाया जा सकता है।
3. इसका उपयोग घरेलू और सड़क प्रकाश व्यवस्था और खाना पकाने के लिए किया जाता है।
4. यह पर्यावरण के अनुकूल है और इससे कोई प्रदूषण नहीं होता है।
5. इसका उपयोग इंजन चलाने के लिए भी किया जाता है।
6. इसे उत्पन्न करना, परिवहन करना और भंडारण करना आसान है।
7. इससे आसपास की स्वच्छता में सुधार होता है।
8. बायोगैस के उत्पादन के बाद बचे अवशेष को खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

निष्कर्ष: बायोगैस का उपयोग पर्यावरण के अनुकूल है। इसका तात्पर्य पशु और पौधों के अपशिष्ट को उपयोगी ऊर्जा में परिवर्तित करना है, जिससे मीथेन का उत्पादन कम हो जाता है। ऐसा बायोगैस दहन के कारण होता है जिसके परिणामस्वरूप ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में शुद्ध कमी आती है। बायोगैस जो मुख्य रूप से मीथेन एक प्राकृतिक गैस है, का उपयोग छोटी भूमि और जल फुट प्रिंट के साथ मिथाइलोकोकस कैप्सुलैटस बैक्टीरिया संस्कृति की खेती करके आर्थिक रूप से गांवों में प्रोटीन समृद्ध मवेशी, मुर्गी और मछली फीड उत्पन्न करने के लिए भी किया जा सकता है। इन संयंत्रों से उत्पाद के रूप में उत्पादित कार्बन डाइऑक्साइड गैस का उपयोग विशेष रूप से भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देशों में शैवाल कृषि से शैवाल तेल या स्पिरुलिना के सस्ते उत्पादन में किया जा सकता है जो निकट भविष्य में कच्चे तेल की प्रमुख स्थिति को विस्थापित कर सकता है। भारत की केंद्र सरकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था और नौकरी की संभावनाओं के उत्थान के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि अपशिष्ट या बायोमास का उत्पादक रूप से उपयोग करने के लिए कई योजनाएं लागू कर रही है। इन पौधों के साथ, अखाद्य बायोमास या खाद्य बायोमास के अपशिष्ट को बिना किसी जल प्रदूषण या ग्रीन हाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन के उच्च मूल्य वाले उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। एलपीजी (तरलीकृत पेट्रोलियम गैस) शहरी भारत में खाना पकाने के ईंधन का एक प्रमुख स्रोत है और इसकी कीमतें वैश्विक ईंधन कीमतों के साथ बढ़ रही हैं।

मशरुम के पोषक तत्व

सरिता एवं गुजंन सनाढ्य
कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा

मशरुम एक प्राचीन खाद्य है जिसे यूरोप व पश्चिमी देशों में बड़े चाव से खाया जाता था। भारत में सुश्रुत संहिता में इसका उल्लेख मिलता है कम जहरीली मशरुम का उपयोग शल्य चिकित्सा में काम में लिया जाता था। हमारे देश में मशरुम खाने का प्रचलन बहुत कम रहा है। वृहद स्तर पर बटन मशरुम उत्पादन 1962 में हिमाचल व कश्मीर में शुरु हुआ, साथ ही लोगों ने इसे खाद्य के रुप में अपनाना प्रारम्भ किया। राष्ट्रीय मशरुम अनुसंधान केन्द्र की स्थापना 1982 के साथ ही अनेक राज्यों में इसके केन्द्र खोले गये। तब उत्पादन मात्र 5 टन के आसपास था जो आज बढ़कर 1,30,000 टन हो गया है।

मशरुम के पोषक तत्व: मशरुम हमारे देश के लिए एक नवीन खाद्य पदार्थ हैं जिसे यदि भोजन के रुप में प्रचलित तथा प्रोत्साहित करना है तो इसके विशिष्ट एवं औषधीय गुणों को प्रचारित करना होगा। विकसित देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति मशरुम की खपत बहुत कम है। अभी संसार में औसतन 30 किलोग्राम मशरुम प्रतिवर्ष/प्रति व्यक्ति खपत है जबकि भारत में यह औसत 80 ग्राम प्रति व्यक्ति/वर्ष है। चीन में यह औसत 60 किलो ग्राम प्रति व्यक्ति/वर्ष है। मशरुम उत्पादकों के हित में होगा कि वे इसके गुणों के बारे में उचित माध्यम एवं तरीके से लोगों को अवगत करायें ताकि मशरुम की खपत बढ़े और किसानों को विपणन की समस्या का समाधान हो सके। मशरुम में उपलब्ध प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, रेशा (फाईबर) विटामिन बी, खनिज तत्व (मिनरल्स), अन्य खनिज लवण एवं सोडियम पोटेशियम का अनुपात इसे अति उपयुक्त खाद्य की श्रेणी में लाता है। इसमें विद्यमान सभी तत्व मशरुम को औषधीय गुण भी प्रदान करते हैं।

मशरुम की सामान्य पौष्टिक संरचना :–

पानी	– 90 प्रतिशत
शुष्क अवयव	– 10 प्रतिशत
प्रोटीन	– 2.5–3.0 प्रतिशत
कार्बोहाइड्रेट	– 4–6 प्रतिशत
वसा	– 0.4–0.6 प्रतिशत
रेशा	– 1 प्रतिशत
राख	– 1 प्रतिशत

ऊर्जा (कैलोरिज): मानव को शारीरिक एवं मानसिक कार्य करने के लिए ऊर्जा चाहिए, जो उसके मुख्य खाद्य पदार्थो जैसे गेहूँ, चावल, मक्का, आलू इत्यादि शर्करा आधारित तथा तेलिय खाद्य जैसे मूंगफली, घी, सोयाबीन इत्यादि से मिलती है। मशरुम इसमें एक बहुत कम ऊर्जा का स्त्रोत (लो कैलोरी फूड) है क्योंकि इसमें पानी अधिक (90 प्रतिशत), शुष्क अव्यव कम (10 प्रतिशत) और वसा कम (0.6 प्रतिशत) होती है। मशरुम में कम ऊर्जा होने से लोग मोटापे के शिकार नहीं होते हैं। इसमें ऊर्जा कम होने के दो मुख्य कारण है। स्टार्च तथा शर्करा का न होना और वसा की मात्रा भी मशरुम में न के बराबर है जिसके कारण यह मधुमेह के रोगियों के लिये उत्तम है।

प्रोटीन: मशरुम का हमारे भोजन में वास्तव में प्रोटीन के स्त्रोत के रुप में महत्व है। ऊर्जा के लिए हम रोटी चावल का प्रयोग करते है। मशरुम में सामान्य सब्जियों की तुलना में प्रोटीन की मात्रा अधिक है। मशरुम में लगभग 2.5–3.0 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। सूखी हुई ढ़िगंरी और अन्य सूखे मशरुम में प्रोटीन 20–30 प्रतिशत हो जाती है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जंतु–जनित प्रोटीन (दूध, अण्डा, मांस, मछली), वनस्पति जनित प्रोटीन की तुलना में बहुत अच्छी गुणवत्ता की होती है। उसका कारण है कि वनस्पति प्रोटीन में कुछ आवश्यक अमीनों अम्लों की कमी पाई जाती है जैसे गेहूँ और चावल में लाईसीन तथा ट्रिप्टोफेन की कमी है। उसी तरह दालों में मिथियोनीन तथा सिस्टीन की कमी है। मशरुम के प्रोटीन की गुणवत्ता मांसाहारी भोजन के बराबर है। मशरुम के प्रोटीन की गुणवत्ता इसलिये अच्छी है कि इसमें सभी आवश्यक अमीनों अम्ल पाये जाते हैं। इसकी प्रोटीन में एक और विशेष बात है कि लाईसीन नामक अमीनों अम्ल की बहुलता है संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मशरुम लाईसीन से भरपूर अच्छी गुणवत्ता की प्रोटीन का उच्च स्त्रोत है। प्रोटीन की उच्च गुणवत्ता, मांसाहार से भी अधिक है।

विटामिन्स: मशरुम में विटामिन ए, डी, इ और के नाममात्र के बराबर या नहीं होते है। इसका मुख्य कारण है कि उपरोक्त विटामिन वसा (तेल) में घुलनशील है और मशरुम में तेल कम होता है। इसलिये ये विटामिन भी कम पाये जाते है। विटामिन सी भी कम (6–8 मिलीग्राम) पाया जाता है। विटामिन बी–कॉम्पेक्स मशरुम में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है अतः हिमोग्लोबिन बनाने के सभी अवयव उपलब्ध है। इसलिये गर्भावस्था में तथा एनीमिया के रोगियों के लिए मशरुम एक उत्तम आहार है।

लवण तत्व: मशरुम में पोटेशियम, सोडियम, मैग्नीशियम की बहुलता होती है। आयरन की मात्रा के साथ–साथ शरीर में इसकी उपलब्धता ज्यादा महत्वपूर्ण है। मशरुम में आयरन की बहुत अधिक मात्रा उपलब्ध आयरन (अवेलेबल–आयरन) के रुप में पाई जाती है यानि संपूर्ण आयरन की मात्रा का अच्छा भाग शरीर के लिए उपलब्ध है। केल्शियम की मात्रा कम पाई जाती है। अन्य खाद्य पदार्थो की तुलना में मशरुम में पोटैशियम–सोडियम का अनुपात अधिक है (100:1)। यानि सोडियम की तुलना में पोटेशियम बहुत अधिक है जिससे यह रक्त–चाप (ब्लेडप्रेशर) में उत्तम आहार है।

रेशा: मशरुम में रेशा की मात्रा बहुत अधिक होती है। (ताजे मशरुम में 1 प्रतिशत तथा शुष्क में लगभग 10 प्रतिशत) जिसके कारण कब्ज में लाभ दायक है। साथ ही रेशे का महत्व भोजन में इस कारण भी बढ़ गया है कि रेशा शरीर के रोगों से लड़ने की क्षमता (इम्यूनिटी) बढ़ाता है। रेशा भोजन का वह भाग है जो पाचन के बाद अवशेष बचता है और मल के रास्ते बाहर निकलता है। हरी–सब्जियों में रेशा अधिक होता है।

मशरुम के औषधीय गुण

- रेशेदार एवं क्षारीय तत्वों की बहुलता होने से यह कब्ज व अजीर्ण रोग से ग्रसित रोगियों के लिए फायदेमंद है।
- कोलेस्ट्रोल की अनुपस्थिति कम स्टार्च तथा वसा होने से यह हृदय रोग व मधुमेह रोगियों के लिये लाभदायक है।
- इसमें वसा कम होने से इसका उपयोग मोटापा कम करने में भी सहायक है।
- महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की बहुलता एवं सहज उपलब्धता के कारण यह कमजोर व्यक्तियों, गर्भवती महिलाओं एवं बढ़ती उम्र के बच्चों के लिये एक महत्वपूर्ण आहार है।
- ढिगंरी मशरुम की एक प्रजाति हीप्सीजाइगस में बीटा ग्लूकेन नामक तत्व उपस्थित होता है, जो कैंसर रोग में प्रभावकारी होता है।
- मशरुम अनेक बीमारियों के विरुद्ध रोग प्रतिरोधक क्षमता भी विकसित करने में सहायक है।
- मशरुम की कुछ प्रजातियां मांसपेशियों व जोड़ों के दर्द में सहायक होती है। इसमें कैंसर रोग की प्रतिरोधक क्षमता भी होती है।

आज संसार में 45 बिलियन डॉलर के बराबर मशरुम भोजन के रुप में प्रयोग हो रहे हैं तो 28 बिलियन डॉलर के बराबर औषधि के रुप में। पूर्वी एशिया (कोरिया, चीन, जापान, थाईलैंड) की औषधी पद्धतियों में मशरुम का प्रयोग सबसे ज्यादा है। गेनोडरमा (रिशी) मशरुम सबसे महत्वपूर्ण औषधीय मशरुम है और औषधीय मशरुम के व्यापार का 70 प्रतिशत भाग गेनोडरमा मशरुम का है जबकि सर्वाधिक व्यापार शिताके मशरुम का है जो 40 प्रतिशत है।

मृदा परीक्षण का कृषि में महत्व

अशोक कुमार सामोता, पी.सी. चपलोत एवं लालचन्द कुमावत
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

मृदा परीक्षण आधुनिक कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है। जो मृदा उत्पादकता व पर्यावरणीय स्वास्थ्य पर अहम प्रभाव डालता है। इसमें पोषक तत्वों की मात्रा, पी.एच. व ई.सी. स्तर एवं अन्य गुणों को निर्धारित करने के लिए मृदा नमूनों का विश्लेषण करना शामिल है। मृदा परीक्षण से प्राप्त जानकारी किसानों को मृदा प्रबंधन, उर्वरक प्रबंधन और फसल चयन के बारे में निर्णय लेने में सहायक होती है।

मृदा परीक्षण क्या है?

मृदा परीक्षण में एक क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों से नमूने एकत्र करना व विभिन्न मापदंडों के लिए उनका विश्लेषण करना शामिल है।

- **कार्बनिक पदार्थ:** जो मिट्टी की उर्वरता और संरचना को प्रभावित करता है।
- **मृदा पी.एच. व ई.सी. का स्तर:** मृदा की अम्लता या क्षारीयता एवं लवणों की मात्रा, जो पोषक तत्वों की उपलब्धता और सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को प्रभावित करती है।
- **पोषक तत्व:** नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, और पोटेशियम जैसे प्राथमिक आवश्यक पोषक तत्वों का स्तर, साथ ही द्वितीयक पोषक तत्व (कैल्शियम, मैग्नीशियम व सल्फर) और सूक्ष्म पोषक तत्व (लौह, जस्ता, मैंगनीज, तांबा, बोरॉन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन व निकिल)।
- मृदा की बनावट: रेत, गाद और मिट्टी का अनुपात, जो जल निकासी को प्रभावित करता है।

मृदा परीक्षण के लाभ:

1. **फसल की पैदावार में वृद्धि:** मृदा परीक्षण फसलों की सटीक पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को निर्धारित करने में मदद करता है। विशिष्ट पोषक तत्वों की जरूरतों की पहचान करके, मृदा परीक्षण किसानों को उर्वरकों को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने में सक्षम बनाता है, जिससे फसल की अधिकतम उपज व अच्छी गुणवत्ता होती है।

2. **लागत प्रभावी उर्वरक:** मृदा परीक्षण उर्वरकों पर होने वाले अनावश्यक व्यय को रोकता है। मौजूदा पोषक तत्वों के स्तर को जानकर, किसान अत्यधिक मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग से बच सकते हैं। लागत को कम कर सकते हैं और जल निकायों में संभावित पोषक तत्वों के बहाव को रोक सकते हैं।

3. **मृदा स्वास्थ्य और संरचना:** मृदा परीक्षण पोषक तत्वों के अलावा मृदा स्वास्थ्य के बारे में भी जानकारी प्रदान करता है। जैसे मृदा की बनावट या कार्बनिक पदार्थ सामग्री से संबंधित को प्रकट करता है, जो मृदा संरचना और उर्वरता को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ वाली स्वस्थ मृदा की नमी को बेहतर बनाए रखती है जिससे लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है। जो दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता में योगदान करते हैं।

4. **परिशुद्धता कृषि:** मृदा परीक्षण कृषि का अभिन्न अंग है, जो फसलों में क्षेत्र की परिवर्तनशीलता को प्रबंधित करने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करता है। मृदा परीक्षण के माध्यम से पोषक तत्वों के स्तरों व मृदा गुणों के विस्तृत मानचित्र बना सकते हैं। यह परिशुद्धता सही मात्रा में इनपुट को लागू करने में मदद करती है जहां उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है, जिससे उत्पादकता और स्थिरता बढ़ती है।

मृदा परीक्षण की पद्धति

1. **नमूना संग्रहण:** मृदा परीक्षण उचित व सटिक नमूना संग्रह से शुरू होता है। परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखते हुए किसानों को एक खेत के भीतर कई स्थानों से नमूने लेने चाहिए। नमूनों को एक सुसंगत गहराई (आमतौर पर 6 इंच) व अंग्रेजी का "वी" आकार बनाकर एकत्र किया जाना चाहिए और एक समग्र नमूना बनाने के लिए मिश्रित किया जाना चाहिए जो पूरे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। उचित टैग लगाकर प्रयोगशाला में भेजे चाहिए।

2. **प्रयोगशाला विश्लेषण:** प्रयोगशाला में संग्रहित नमूनों में विभिन्न गुणों के लिए विश्लेषण किया जाता है।

- कार्बनिक पदार्थ सामग्री: विघटित पौधों की मात्रा से कार्बनिक कार्बन को मापा जाता है।
- **संरचना व बनावट विश्लेषण:** बालू, सिल्ट और क्ले का अनुपात निर्धारित किया जाता है।
- **पोषक तत्व विश्लेषण:** आवश्यक एवं ट्रेस पोषक तत्वों की सांद्रता निर्धारित की जाती है।
- **पी.एच. व ई.सी. का माप:** मृदा अम्लता या क्षारीयता एवं लवणों की मात्रा का आंकलन किया जाता है।
- **उर्वरक सिफारिशें:** पोषक तत्वों की कमी या अधिकता पर उर्वरकों की सिफारिशें की जाती है।
- **मृदा सुधार:** मृदा की संरचना व उर्वरता में सुधार करने की सिफारिशें की जाती है।

चुनौतियाँ और विचार

हालाँकि मृदा परीक्षण अनेक लाभ प्रदान करता है, फिर भी कुछ चुनौतियाँ व विचार भी ध्यान में रखने योग्य हैं:

- **मृदा की स्थितियों में परिवर्तनशीलता:** किसी एक खेत या क्षेत्र में मृदा की स्थितियाँ व्यापक रूप से भिन्न हो सकती हैं। मृदा परीक्षण परिणामों की सटीक व्याख्या के लिए स्थानीय मृदा परिवर्तनशीलता की समझ और उचित नमूना तकनीकों के उपयोग की आवश्यकता होती है।
- **जागरूकता का अभाव:** मृदा परीक्षण के लिए नमूना कैसे प्राप्त करे, कहां पर जांच कराये एवं इससे होने वाले लाभ के बारें में किसानों के बीच जागरूकता होनी चाहिए। ताकि बढ़ती हुई कृषिगत लागत को कम किया जा सके। मृदा में लवणता संबंधित बाधा को दूर करने में भी मृदा परीक्षण मदद कर सकता है।
- **शिक्षण और प्रशिक्षण:** मृदा परीक्षण परिणामों की प्रभावी ढंग से व्याख्या करने और वैज्ञानिकों की सिफारिशों को लागू करने के लिए किसानों को शिक्षा और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। विस्तार सेवाएँ और कृषि सलाहकार यह सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निष्कर्ष: आधुनिक कृषि में मृदा परीक्षण आवश्यक है। जो बढ़ी हुई फसल उपज, लागत प्रभावी उर्वरक और पर्यावरण संरक्षण करता है। मृदा परीक्षण किसानों को निर्णय लेने में सक्षम बनाता है जो स्थिरता को बढ़ावा देते हुए उत्पादकता को अनुकूलित करता है। जैसे–जैसे कृषि पद्धतियों का विकास जारी है, मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता को सुनिश्चित करने में मृदा परीक्षण की भूमिका खेती के भविष्य के लिए केंद्रीय बनी रहेगी। चुनौतियों का समाधान करने और तकनीकी प्रगति का लाभ उठाने से मृदा परीक्षण के लाभ और बढ़ेंगे, जिससे अधिक टिकाऊ और लचीली कृषि प्रणाली में योगदान मिलेगा।

कृषि प्रदूषण के निवारण में प्राकृतिक सूक्ष्मजीवों की भूमिका

आशा कुमारी, विकास शर्मा एवं ए. के. शर्मा

कृषि महाविद्यालय, जूनागढ़, गुजरात एवं कृषि महाविद्यालय, बीकानेर-334006

कृषि क्षेत्र में प्रदूषण न केवल पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, बल्कि यह भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए भी घातक है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग, मृदा क्षरण, और जल प्रदूषण जैसी समस्याओं के कारण कृषि उत्पादकता में कमी आई है, जो अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी चिंता का विषय है। हाल ही के आंकड़ों के अनुसार, भारत में प्रति हेक्टेयर औसतन 135 किलोग्राम रासायनिक उर्वरक का उपयोग हुआ है, जो वैश्विक स्तर के औसत से काफी अधिक है। जिसके परिणामस्वरूप, मिट्टी की गुणवत्ता में कमी, जल संसाधनों का दूषित होना और जैव विविधता में गिरावट जैसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। रासायनिक पदार्थों का उपयोग मिट्टी में भारी धातुओं और अन्य विषाक्त पदार्थों की मात्रा को बढ़ा दिया है, जो न केवल फसलों में, बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हैं। आंकड़ों के अनुसार, भारत के 75% से अधिक जल स्रोतों में रासायनिक अवशेष पाए गए हैं, जो जल जनित बीमारियों का मुख्य कारण हैं। जिससे प्रत्यक्ष रूप से कृषि में प्रदूषण देखने को मिला है इसके विपरीत, कृषि क्षेत्र में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है, जो पर्यावरण और आर्थिक दृष्टिकोण से लाभकारी हैं। ये सूक्ष्मजीव हानिकारक कीटों को प्रभावी ढंग से संक्रमित कर नियंत्रित करने (जैविक कीट नियंत्रण) के साथ, बायोरेमेडिएशन प्रक्रिया, जैव उर्वरक, जैविक अपघटन जैसी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कीट नियंत्रण के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवों में कवक, बैक्टीरिया और वायरस शामिल हैं जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी, पानी और हवा जैसे वातावरण में पाए जाते हैं।

भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रदूषण का प्रभाव

1. भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव : कृषि उत्पादकता में कमी: भारत में, कृषि क्षेत्र जी डी पी का लगभग 16-18% योगदान देने के साथ–साथ 50% से अधिक आबादी की आजीविका का स्रोत भी है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा की उर्वरता में कमी आई है, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ है। स्टैंडिंग कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय कृषि उत्पादन में, प्रदूषण के कारण लगभग 10-15% की कमी देखी गई है। इससे किसानों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के साथ –साथ अर्थव्यवस्था पर भी दबाव बढ़ता जा रहा है।

स्वास्थ्य खर्चों में वृद्धि : रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के उपयोग से जल और मृदा प्रदूषण होता है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, जैसे कि कैंसर, त्वचा रोग, और श्वसन संबंधी बीमारियाँ बढ़ रही हैं। सन 2021 में, वायु और जल प्रदूषण से जुड़ी बीमारियों के इलाज पर भारत में, अनुमानित 8.5 बिलियन डॉलर का खर्चा हुआ तथा जो कि स्वास्थ्य क्षेत्र में बजट का एक बड़ा हिस्सा रखता है।

जल संसाधनों का प्रदूषण : भारतीय कृषि में जल स्रोतों का प्रदूषित होना एक गंभीर समस्या है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार, 40% भारतीय नदियाँ रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के कारण प्रदूषित हो चुकी हैं। जिसके कारण पेयजल की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है साथ ही कृषि सिंचाई के लिए भी शुद्ध जल की मात्रा में कमी आई है।

2. वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रभाव : खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव : विश्व स्तर पर, प्रदूषण के कारण कृषि उत्पादन में कमी आई है, जिससे खाद्य सुरक्षा पर खतरा बढ़ गया है। खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, सन 2022 में, जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के कारण वैश्विक खाद्य उत्पादन में 20% तक की कमी देखी गई है। परिणामस्वरूप खाद्य उत्पादों की कीमतों में बढ़ोतरी हुई, जिससे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है।

जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि : कृषि प्रदूषण पर एक अन्य बड़ा प्रभाव जलवायु परिवर्तन के रूप में देखा गया है। ग्रीनहाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन से प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि हो रही है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के आंकड़ों के अनुसार सन, 2021 में, जलवायु परिवर्तन के कारण वैश्विक स्तर पर लगभग 280 अरब डॉलर का आर्थिक नुकसान देखने को मिला है ।

वैश्विक व्यापार और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव : कृषि प्रदूषण के कारण उत्पादकता में कमी आने से वैश्विक खाद्य बाजारों में अस्थिरता बढ़ी है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर भी इसका प्रभाव पड़ा है, क्योंकि कई देशों पर प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने सख्त नियम लागू किए हैं, जिससे आयात–निर्यात की लागत में बढ़ोतरी हुई है।

सूक्ष्मजीवों के द्वारा निवारण

1. जैव उर्वरक का उपयोग : जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम, एजोस्पिरिलम, और माइकोराइजा फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं। ये रासायनिक उर्वरकों का एक पर्यावरण–अनुकूल विकल्प हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, के अध्ययन के अनुसार, जैव उर्वरकों के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता में 25-30% की कमी आई है, जिससे कृषि लागत कमी हुई है और मृदा स्वास्थ्य में भी सुधार देखने को मिला है।

2. जैव कीटनाशक का उपयोग : जैव कीटनाशक जैसे बैसिलस थुरिंजिनसिस और ब्यूवेरिया बैसियाना का उपयोग फसलों को कीटों और रोगों से बचाने के लिए किया जाता है। यह रासायनिक कीटनाशकों का एक सुरक्षित विकल्प है और पर्यावरण को कोई हानि नहीं पहुँचाते। जैव कीटनाशकों के उपयोग से कृषि प्रदूषण में 30-40% तक की कमी देखी गई है।

3. बायोरेमेडिएशन तकनीक : बायोरेमेडिएशन एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके मिट्टी और जल में मौजूद प्रदूषकों को हटाया जाता है। स्यूडोमोनास और एस्पर्जिलस जैसे सूक्ष्मजीव प्रदूषणकारी रासायनिक अवशेषों को विघटित करते हैं। सन 2022 में, भारत के कुछ क्षेत्रों में बायोरेमेडिएशन तकनीक के उपयोग से जल और मृदा प्रदूषण में 50% की कमी दर्ज की गई है।

4. जैविक अपशिष्ट प्रबंधन : कृषि अपशिष्ट का जैविक अपघटन (बायोडिग्रेडेशन) सूक्ष्मजीवों के माध्यम से किया जा रहा है, जिससे अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या काफी हद तक हल हुई है साथ ही मिट्टी की उर्वरता में सुधार हुआ है। जैविक अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों के उपयोग से मिट्टी की कार्बन सामग्री में 15-20% की वृद्धि हुई है, जिससे फसल उत्पादन में सुधार हुआ है।

5. सूक्ष्मजीवों द्वारा कार्बन स्थिरीकरण : सूक्ष्मजीवों द्वारा मृदा में कार्बन स्थिरीकरण किया जाता हैं, जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के साथ जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, सूक्ष्मजीवों के माध्यम से कार्बन स्थिरीकरण की प्रक्रिया से ग्लोबल वार्मिंग को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने में मदद मिल रही है।

6. सूक्ष्मजीवों द्वारा मृदा की संरचना में सुधार : माइकोराइजा जैसे फफूंद पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं, जिससे मिट्टी की संरचना और जलधारण क्षमता में सुधार होता है।, माइकोराइजा के उपयोग से मिट्टी की जल धारण क्षमता में 25% तक वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष : कृषि क्षेत्र में प्रदूषण का भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। यह समस्या न केवल कृषि उत्पादन एवं स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है, बल्कि भारतीय एवं वैश्विक स्तर पर आर्थिक स्थिरता और खाद्य सुरक्षा के लिए भी खतरा है। सूक्ष्मजीवों का उपयोग एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है, जो कृषि प्रदूषण एवं पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने के साथ–साथ कृषि उत्पादकता में सुधार करता है। जैव उर्वरक, जैव कीटनाशक, और बायोरेमेडिएशन जैसी तकनीकों का उपयोग करके हम एक स्थायी और पर्यावरण–अनुकूल कृषि प्रणाली की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं, जिससे भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी लाभ होगा।

शुष्क क्षेत्रों में सहजन: हरित क्रांति की ओर एक कदम

प्रहलाद सहाय शर्मा, रोनक कूड़ी, मनोहर लाल मीणा, संतोष चौधरी एवं कुलदीप सिंह राजावत
कृषि विश्वविद्यालय-जोधपुर (राज.)

शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में कृषि हमेशा से एक चुनौती रही है, जहां पानी की कमी, खराब मिट्टी और कठोर जलवायु परिस्थितियाँ किसानों को कठिनाइयों में डाल देती हैं। ऐसे समय में, सहजन द्धमोरिंगाऋ एक चमत्कारी पौधा साबित हो रहा है, जो न केवल कम पानी और विपरीत परिस्थितियों में पनप सकता है, बल्कि पोषण, आर्थिक स्थिरता और पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सहजन, जिसे ''चमत्कारी वृक्ष'' के नाम से भी जाना जाता है, न केवल सूखे की मार झेलने वाले क्षेत्रों में हरा–भरा रहता है, बल्कि इसकी पत्तियां, फल और बीज पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। यह पौधा न केवल ग्रामीण समुदायों के लिए पोषण सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि आय का एक स्थिर स्रोत भी बन सकता है। इसके अतिरिक्त, इसकी जड़ों और बीजों का उपयोग पानी शुद्ध करने में भी किया जा सकता है, जो शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सहजन का वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलिफेरा है। इसे अंग्रेजी में ड्रमस्टिक ट्री के नाम से जाना जाता है। इसे हिंदी में सहजन, सेंजन, मुंगा संस्कृत में सोभांजना व आयुर्वेद में मोक्षका बोलते हैं। यह एक बहुउपयोगी पेड़ है। सहजन मूल रूप से भारत में पाया जाता है, परंतु इसकी खेती अफ्रीका मध्य और दक्षिण अमेरिका, श्रीलंका, मलेशिया और फिलीपींस में भी होती है। भारत में सहजन की खेती व्यापक रूप में की जाती है। इसमें पाए जाने वाले औषधीय गुणों के कारण इसका उपयोग पूरे विश्व में किया जाता है। सहजन का पेड़ बहुत ही लाभकारी है। इसके पत्ते, फल और फूल मनुष्य एवं पशुओं के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का भंडार हैं। सहजन की सब्जी ही नहीं बल्कि इसके पेड़ के विभिन्न भागों का अनेक उपयोग पुराने जमाने से ही किया जा रहा है। इसके फूल, फली व पत्तों में इतने पोषक तत्व होते हैं कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के मार्गदर्शन में दक्षिण अफ्रीका के कई देशों में कुपोषण पीड़ित लोगों के आहार के रूप में सहजन का प्रयोग करने की सलाह दी गई है। इसकी सब्जी को अपने आहार में शामिल कीजिये और इसका लाभ उठाइये। आयुर्वेद में 300 रोगों का सहजन से उपचार बताया गया है। सहजन के बीज से तेल निकाला जाता है और छाल, पत्ती, गोंद, जड़ आदि से आयुर्वेदिक दवाएं तैयार की जाती हैं। यह कई रोगों को दूर करता है और शरीर के हर अंग को मजबूती भी देता है, क्योंकि इसमें बहुत सारे पोषक तत्व भरे हुए हैं। सहजन की खेती को नकदी और व्यावसायिक लाभ देने वाली फसल भी माना जाता है। बाजार में सहजन के फूल और छोटे–छोटे सहजन से लेकर बड़े सहजन के फलों का अच्छा दाम मिलता है । इसके अलावा सहजन के बीजों से तेल निकाल कर उसे भी उपयोग में लाया जाता है। इसकी फलियां साल में दो बार लगती हैं। इसका पौधा लगाने के दस महीने बाद फल देने लगता है। और अगले चार साल तक उत्पादन देता रहता है।

निम्नलिखित कारणों से शुष्क क्षेत्रों में उपयोगी

1. **कम पानी की आवश्यकता:** सहजन न्यूनतम जल में पनप सकता है। यह सूखा–रोधी पौधा 6.5–7.5 pH वाली कमजोर मिट्टी में भी अच्छी तरह बढ़ता है।

2. **तेजी से वृद्धि:** सहजन अन्य पौधों की तुलना में तेजी से बढ़ता है और 6–8 महीने में उत्पादन देने लगता है।

3. **पोषण सुरक्षा:** सहजन के पत्तों और फलों में प्रोटीन, विटामिन ए, विटामिन सी, कैल्शियम और आयरन भरपूर मात्रा में होते हैं।

4. **बहुआयामी उपयोग:** इसका उपयोग पोषण, औषधि, जैविक खाद, और पानी शुद्ध करने में होता है।

सहजन के पोषक तत्व

पोषक तत्व	मात्रा (100 ग्राम में)
नमी	85.39 प्रतिशत
ऊर्जा	123 कैलोरी जूल
प्रोटीन	2.62 ग्राम
वसा	0.12 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	3.76 ग्राम
रेशा	6.83 ग्राम
खनिज लवण	1.27 ग्राम
आयरन	0.73 मिलीग्राम
कैल्शियम	33.30 मिलीग्राम
सोडियम	22.38 मिलीग्राम
पोटेशियम	419 मिलीग्राम
विटामिन 'सी	71.86 मिलीग्राम
बीटा कैरोटीन	17.28 माइक्रोग्राम
फॉलिक एसिड	62.75 माइक्रोग्राम

स्रोत–राष्ट्रीय पोषण संस्थान (2017)

पोषण का खजाना : सहजन में विटामिन 'सी'–संतरे से सात गुना, विटामिन 'ए'–गाजर से चार गुना, कैल्शियम–दूध से चार गुना व प्रोटीन–दही की तुलना में तीन गुना ज्यादा पाया जाता है। इसका उपयोग वात व उदरशूल, नेत्ररोग, मोच, शियाटिका, गठिया, दमा, जलोधर, पथरी, प्लीहा आदि रोगों के लिए श्रेयष्कर है।

जलवायु : जलवायु की बात करें तो सहजन उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु का पौधा है। उन स्थानों में इसकी खेती सबसे अच्छी होती है, जहां की समुद्र तल से ऊंचाई 500 मीटर हो और जहां धूप सीधी पड़ती हो। यह पौधा शुष्क क्षेत्रों में भी जीवित रह सकता है।

उपयुक्त मृदा : इसकी खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में आसानी से की जा सकती है यहाँ तक कि बंजर व कम उर्वर भूमि में भी इसको सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। फलियों व पत्तियों का अधिक उत्पादन के लिए 6.5 से 7.5 पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मृदा सर्वोतम मानी गयी है। खेत का चयन करते समय ध्यान रखे की भूमि अच्छे जल निकास वाली हो, जहां जल भराव की समस्या हो वहा इसकी खेती उपयुक्त नही होती है।

उर्वरक प्रबंधन : रोपण के तीन महीने के बाद 100 ग्राम यूरिया, 100 ग्राम सुपर फॉस्फेट एवं 50 ग्राम पोटाश प्रति गड्ढे की दर से डालें तथा इसके तीन महीने बाद 100 ग्राम यूरिया प्रत्येक गड्ढे में पुनः डालें। सहजन पर किए गए शोध में यह पाया गया कि मात्रा 15 कि.ग्रा. गोबर

की खाद प्रति गड्ढे तथा एजोस्पिरिलम और पी.एस.बी. (5 कि.ग्रा./हैक्टर) के प्रयोग से इसकी जैविक खेती, उपज में बिना किसी हानि के की जा सकती है।

नर्सरी प्रबंधन : नर्सरी प्रबंधन के लिए 18 सें.मी ऊंचाई और 12 सें.मी. व्यास के पॉलीथीन थैलों का उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक थैले में दो या तीन बीजों को 1 से 2 सें.मी. की गहराई तक लगाया जाता है। अंकुरण 5 से 10 दिनों में आना प्रारंभ होता है, जो पूर्व उपचारित विधि पर निर्भर करता है। 60–90 सें.मी. ऊंचे पौधों को खेत में रोपित किया जाता है।

सिंचाई प्रबंधन: सहजन सूखा सहनशील फसल है। इसमें अधिक पानी की आवश्यकता नही होती है। बारिश के समय सिंचाई की आवश्यकता नही होती है। पौधों में एक बार जड. विकसित होने के पश्चात यदि पानी उपलब्ध नही भी होता है तो वो पत्तियां झाड़ देता है परन्तु मरता नही है। पौधों की रोपाई के प्रथम चार से छः माह में नियमित रुप से सर्दियों में 15 दिन तथा गर्मियों में 7–10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए।

रोपाई का समय व तरीका : उत्तरी भारत में रोपाई हेतु बसंत ऋतु सर्वोतम होती है परन्तु कम वर्षा वाले क्षेत्रों अथवा जल निकास का समुचित प्रबंधन होने पर रोपण का कार्य जुलाई–अगस्त में भी कर सकते हैं। पौधे लगाने का तरीका व रोपण की दूरी उगाने के उद्देश्य पर निर्भर करती है। पत्तियों व चारा उत्पादन के लिए सघन पौध रोपण (15 x 15 सेमी. या 20 ग 10 सेमी.) करते हैं जिससे अधिकतम पैदावार मिल सके परन्तु इसमें देखरेख व प्रबंधन की बहुत आवश्यकता होती है। वहीं यदि फसल का रोपण फलियों के उत्पादन के लिए कर रहे हैं तो पौधे सें पौधे व कतार से कतार की उचित दूरी 2.5 ग 2.5 मीटर की रखी जाती है। इस हिसाब से 1600 पौधे प्रति हैक्टर क्षेत्र में लग जाते है।

सहजन की उन्नत किस्में : आईसीएआर–केंद्रीय बागवानी प्रयोग केंद्र, गोधरा, गुजरात से निकाली गई किस्में

थार हर्ष : एक वार्षिक किस्म है जिसमें गहरे हरे रंग की पत्तियों (54.5 सेमी लंबी और 35.2 सेमी चौड़ी) के साथ घने पत्ते होते हैं। थार हर्ष में फल लगने की शुरुआत पी.के.म–1 (फरवरी से मार्च) की तुलना में देर से (मार्च से मई) होती है। प्रत्येक पौधा एक वर्ष में लगभग 314 फलियाँ पैदा करता है और इसकी उपज क्षमता 53–54.7 टन हेक्टेयर है।

थार तेजस : इसके पौधे 265–318 सेमी तक बढ़ते हैं और 261.5 सेमी (पूर्व–पश्चिम) और 287.2 सेमी (उत्तर–दक्षिण) तक फैलते हैं। वर्षा आधारित अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में इसमें 2.74 मीटर पौधे की ऊंचाई, प्रति पौधे 245 फली, प्रत्येक फली का वजन 218 ग्राम, फल की लंबाई 45–48 सेमी और प्रति फली 9–10 बीज दर्ज किए गए। जनवरी–मार्च के दौरान फल पकते हैं। यह तुलनात्मक रूप से जल्दी फूलने वाला पौधा है और जल्दी पकने वाला फल जनवरी–मार्च के दौरान कटाई के लिए आता है।

वार्षिक सहजन की किस्में :
पी.के.म.–1 ए पी.के.म–2, के.एम.–1 और धनराज

बारहमासी सहजन की किस्में : मुलनूर मोरिंगा, वाल्यापट्टी मोरिंगा, चवकाचेरी मोरिंगा, चेमुरुंगाई, जापफना, कत्तूमुरंगाई, कोडीकलमुरंगी, पालमुरुंगई, पुनमुरुंगाई और पलमडू मोरिंगा।

सहजन की खेती से होने वाले मुख्य फायदे

1. सहजन के पौधों की मुख्य विशेषता यह हैं कि इसके एक बार बुवाई कर देने के बाद यह चार साल तक उपज देता हैं। इसके पौधों को अधिक जमीन की आवश्यकता नहीं होती इसे घर के बगल में भी लगा सकते हैं। इसके पेड़ को न ही ज्यादा पानी की आवश्यकता होती हैं और न ही इसका ज्यादा रखरखाव करना पड़ता है।

2. सहजन बहुउपयोगी पौधा हैं । पौधे के सभी भागों का प्रयोग भोजन, दवा औद्योगिक कार्यो आदि में किया जाता हैं। सहजन में प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व व विटामिन हैं ।

3. सहजन का फूल, फल और पत्तियों का भोजन के रूप में उपयोग होता हैं। सहजन का छाल, पत्ती, बीज, गोंद, जड़ आदि से आयुर्वेदिक दवा तैयार किया जाता हैं। जो लगभग 300 प्रकार के बीमारियों के इलाज में काम आता हैं।
4. भारत वर्ष में कई आयुर्वेदिक कम्पनी मुख्यतः "संजीवन हर्बल" व्यवसायिक रूप से सहजन से दवा बनाकर (पाउडर, कैप्सूल, तेल बीज आदि) विदेशों में निर्यात कर रहे हैं।

5. दियारा क्षेत्र में सहजन के नये प्रभेदों की खेती को बढ़ावा देकर न सिर्फ स्थानीय व दूर–दराज के बाजारों में सब्जी के रूप में इसका सालों भर बिक्रीकर आमदनी कमाया जा सकता है, बल्कि इसके औषधीय व औद्योगिक गुणों पर ध्यान रखते हुए किसानों के बीच में एक स्थाई दीर्घकालीन आमदनी हेतु सोच विकसित किया जा सकता हैं।

6. सहजन बिना किसी विशेष देखभाल एवं शून्य लागत पर आमदनी देनी वाली फसल हैं। किसान भाई अपने घरों के आसपास अनुपयोगी जमीन पर सहजन के कुछ पौधे लगाकर जहां उन्हें घर के खाने के लिए सब्जी उपलब्ध हो सकेंगी वहीं इसे बेचकर आर्थिक सम्पन्नता भी हासिल कर सकते हैं।

कीट और रोग प्रबंधन

पाउडरी फफूंद

क्षति के लक्षण: पत्तियों, तनों और फलियों पर सफेद चूर्ण जैसे धब्बे, जिससे विकास अवरुद्ध हो जाता है और उपज कम हो जाती है।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: लेबल पर दिए निर्देशों के अनुसार सल्फर, माइक्लोबुटानिल या प्रोपिकोनाजोल जैसे सक्रिय तत्वों वाले कवकनाशकों का प्रयोग करें।

एफिड्स
क्षति के लक्षण: पत्तियों पर चिपचिपा शहद, पत्तियों का मुड़ना, तथा एफिड के भोजन के कारण विकृत वृद्धि।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: एफिड आबादी को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए नियोनिकोटिनोइड्स, पाइरेथ्रोइड्स या इमिडाक्लोप्रिड युक्त कीटनाशकों का उपयोग करें।

स्पाइडर माइट्स
क्षति के लक्षण: पत्तियों पर बारीक जाल, पीले धब्बे, तथा घुन के कारण पत्तियों का रंग खराब होना।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: स्पाइडर माइट के संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए एबामेक्टिन, स्पाइरोमेसिफेन या हेक्सीथियाजॉक्स जैसे सक्रिय तत्वों वाले एसारिसाइड्स का प्रयोग करें।

कैटरपिलर
क्षति के लक्षण: पत्तियों में छेद, पत्तियों का झड़ना, तथा इल्लियों के खाने के कारण युवा टहनियों को क्षति।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: कैटरपिलर कीटों को लक्षित करने और नष्ट करने के लिए बेसिलस थुरिजिएसिस (बीटी), स्पिनोसेड या कार्बरिल युक्त कीटनाशकों का उपयोग करें।

पत्ती धब्बा (अल्टरनेरिया एसपीपी.)
क्षति के लक्षण: पत्तियों पर पीले घेरे के साथ गोलाकार भूरे धब्बे, जो अंततः पत्तियों के झड़ने का कारण बनते हैं।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: पौधों में पत्ती धब्बा रोग को नियंत्रित करने के लिए क्लोरोथेलोनिल, मेन्कोजेब या कश्वपर हाइड्रोक्साइड युक्त कवकनाशी का उपयोग करें।

सफेद मक्खियाँ
क्षति के लक्षण: चिपचिपा शहद जैसा द्रव, पत्तियों का पीला पड़ना।

रासायनिक नियंत्रण उपाय : सफेद मक्खी की आबादी को लक्षित करने और समाप्त करने के लिए, पाइरेथ्रोइड्स, नियोनिकोटिनोइड्स या कीटनाशक तेल जैसे सक्रिय तत्वों वाले कीटनाशकों का प्रयोग करें।

तना छेदक कीट
क्षति के लक्षण: तने में प्रवेश छिद्र, पौधे के अंदर सुरंगें, तथा बोरर लार्वा के भोजन के कारण शाखाओं का मुरझाना।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: तना छेदक के संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए क्लोरएंट्रानिलिप्रोएल, इमामेक्टिन बेंजोएट या साइपरमेथ्रिन जैसे प्रणालीगत सक्रिय तत्वों वाले कीटनाशकों का उपयोग करें।

एन्थ्रेक्नोज
क्षति के लक्षण: पत्तियों, तनों और फलों पर गहरे धंसे हुए घाव, जिससे ऊतक क्षय होता है और पोधे का क्षय होता है।

रासायनिक नियंत्रण उपाय: पौधों में एन्थ्रेक्नोज रोगों को नियंत्रित करने के लिए एजोक्सीस्ट्रोबिन, पाइराक्लोस्ट्रोबिन या टेबुकोनाजोल जैसे सक्रिय तत्वों वाले कवकनाशकों का प्रयोग करें

कटाई की तकनीक : इष्टतम उपज और पोषक तत्व सामग्री के लिए सही समय पर सहजन की कटाई करें। मोरिंगा के पत्तों की कटाई तब की जाती हे जब पोधा लगभग 1.5 से 2 मीटर की ऊंचाई तक पहुँच जाता है, आमतौर पर रोपण के लगभग 60–90 दिन बाद। पत्तियों को सुबह के समय तोड़ा जाना चाहिए जब उनमें पोषक तत्व सबसे अधिक होते हैं। पत्तेदार शाखाओं को काटने के लिए तेज केंची का उपयोग करें, फिर से उगने के लिए लगभग 10–15 सेमी की वृद्धि छोड़ दें। मोरिंगा की फलियों की कटाई के लिए, सबसे अच्छे स्वाद और पोषण मूल्य के लिए, उनके युवा और कोमल होने तक प्रतीक्षा करें, लगभग 1–2 इंच लंबे। फलियों को हाथ से तोड़ा जा सकता है या चाकू से काटा जा सकता है।

निष्कर्ष
शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सहजन एक क्रांतिकारी समाधान के रूप में उभर रहा है। अपनी अद्भुत पोषण क्षमता, कम संसाधनों में पनपने की विशेषता, और बहुपयोगी गुणों के कारण यह न केवल इन क्षेत्रों में हरियाली और पोषण सुरक्षा ला सकता है, बल्कि किसानों की आय में भी वृद्धि कर सकता है। सहजन की खेती में कम पानी और न्यूनतम देखभाल की आवश्यकता होती है, जो इसे जलवायु परिवर्तन और पानी की कमी से जूझ रहे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बनाती है। इसके अलावा, सहजन के उत्पादों की वैश्विक मांग इसके व्यावसायिक उत्पादन की संभावनाओं को बढ़ाती है। यह पौधा पर्यावरणीय स्थिरता, भूमि पुनर्जीवन और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक उत्थान के लिए एक स्थायी समाधान प्रदान करता है। यदि सहजन की वैज्ञानिक खेती को प्रोत्साहित किया जाए और इसे आधुनिक कृषि तकनीकों के साथ जोड़ा जाए, तो यह शुष्क क्षेत्रों में हरित क्रांति लाने की क्षमता रखता है। यह न केवल इन क्षेत्रों की कृषि को पुनर्जीवित करेगा, बल्कि जलवायु संकट के प्रभाव को कम करने में भी मदद करेगा। सहजन वास्तव में, हरित क्रांति की दिशा में एक सार्थक कदम है, जो कृषि, पर्यावरण और समाज तीनों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

मधुमक्खीपालन कर अपनी आय बढ़ाये

हरिप्रसाद मेघवाल, प्रताप सिंह, मधुलता भास्कर एवं योगेन्द्र कुमार शर्मा
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

मधुमक्खी पालन भी एक प्रकार का लघु व्यवसाय हैं जिसमें लकड़ी के बने हुए बक्सें द्धमौन गृहऋ में मधुमक्खियों को पालते हैं जिससे उत्पाद के रूप में ाहद एवं मोम प्राप्त होता हैं जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी का अच्छा स्रोत्र हैं। मधुमक्खी पालन कृषि से ही जुड़ा एक व्यवसाय हैं जिसको अपनाकर किसान भाई कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कृषि से जुड़े लोग एवं बेरोजगार ग्रामीण युवक जिनके पास स्वयं की भूमि नहीं हैं वे भी इस व्यवसाय आसानी से अपना कर अपनी आय बढ़ा सकते हैं। मधुमक्खियों द्वारा परागण से फसलों में लगभग 20–30 प्रतिशत उपज वृद्धि हो जाती हैं। शहद और मोम के अलावा इनसे सहउत्पाद के रूप में प्रोपोलिश, रॉयल जेली एवं बी वेनम भी प्राप्त होता हैं।

मधुमक्खी की विभिन्न प्रजातियॉ पाई जाती है जिनका शहद उत्पादन निम्न प्रकार है।

1. एपिस डोरसेटा – शहद उत्पादन 30 से 40 किलोग्राम प्रति वर्ष
2. एपिस फ्लोरिया – शहद उत्पादन 200 ग्राम से 2 किलोग्राम प्रति वर्ष
3. एपिस सिराना – शहद उत्पादन 2 से 5 किलोग्राम प्रति वर्ष
4. एपिस मेलिफेरा – शहद उत्पादन 50 से 60 किलोग्राम प्रति वर्ष

मधुमक्खीपालन व्यवसाय के लिए मधुमक्खी की एपिस मेलिफेरा प्रजाती को लकड़ी के बक्सों मे आसानी से पाला जा सकता हैं क्योंकि इस प्रजाती की मधुमक्खी अधिक शहद उत्पादन करने वाली एवं स्वभाव से शांत होती हैं। इस प्रजाती की रानी मधुमक्खी में अण्डे देने की क्षमता भी अधिक होती हैं।

मधुमक्खी कॉलोनी में रानी, नर एवं श्रमिक पाये जाते है आसानी से पहचाना जा सकता हैं।

रानी मधुमक्खी :
रानी मधुमक्खी लम्बे उदर व सुनहरे रंग की होती हैं जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है। एक कॉलोनी में एक ही रानी होती हैं जिसका जीवन काल लगभग तीन वर्ष का होता हैं। रानी का कार्य केवल अण्डे देकर वंश वृद्धि करना हैं। यह लगभग 2500 से 3000 अण्डे प्रतिदिन देती रहती हैं जो कि गर्भित व अगर्भित दो प्रकार के होते हैं। इसके गर्भित अण्डे से मादा व अगर्भित अण्डे से नर मधुमक्खी बनती हैं। रानी लगभग 15–16 दिन मे विकसित हो जाती हैं।

नर मधुमक्खी या ड्रोन :
नर मधुमक्खी गोल, काले उदरयुक्त एवं डंक रहित होती हैं। प्रजनन काल मे इनकी अधिक पायी जाती है एवं रानी मधुमक्खी के साथ प्रजनन कार्य सम्पन्न करते हैं। रानी मधुमक्खी के साथ प्रजनन के उपरान्त नर मधुमक्खी मर जाती हैं, यह नपशियत फ्लाइट कहलाता हैं। प्रजनन के तीन दिन के बाद रानी मधुमक्खी अण्डे देने का कार्य प्रारंभ कर देती हैं।

मादा मधुमक्खी या श्रमिक :
पूर्णतया विकसित डंक वाली श्रमिक मक्खी मौनगृह के समस्त कार्यो को संचालित करती हैं। इनका जीवनकाल 40 से 45 दिन का होता हैं। श्रमिक मक्खी कोश से पैदा होने के तीसरे दिन से कार्य करना प्रारम्भ कर देती हैं। मोम उत्पादित करना, रॉयल जेली श्रावित करना, छता बनाना, छते की सफाई करना, छते का तापक्रम बनाए रखना, कोषों की सफाई करना, वातायन करना, भोजन के स्रोत की खोज करना, मकरन्द को मधु रूप में परिवर्तित कर संचित करना, प्रवेश द्वार पर चौकीदारी करना इत्यादि कार्य मादा मधुमक्खी द्वारा किए जाते हैं।

मधुमक्खी पालन के लिए स्थान का चुनाव करते समय ध्यान रखने योग्य बातों

- ऐसे स्थान का चयन आवश्यक है जिसके चारों तरफ 2–3 किमी. के क्षेत्र में पेड़–पौधे बहुतायत में, हों जिनसे पराग व मकरंद अधिक समय तक उपलब्ध हो सके।
- बॉक्स स्थापना हेतु स्थान समतल व पानी का उचित निकास होना चाहिए।
- जहाँ मौनगृह स्थापित होना है, वह स्थान छायादार होना चाहिए।
- वह स्थान दीमक व चीटियों से नियंतित्र होना आवश्यक है।

मौनृह का निरीक्षण एवं प्रबन्धन :
मधुखंड निरीक्षण
मधुखंड के निरीक्षण के समय यह देखते हैं कि किन– किन फ्रेम (चौखटों) में शहद है। जिन चौखटों में शहद 75–80 प्रतिशत तक जमा है, उस फ्रेम को निकाल कर जमा शहद को चाकू से खरोंच कर मधुनिष्कासन मशीन द्वारा परिशोषित मधु प्राप्त करते हैं।

शिशुखंड निरीक्षण
शिशुखंड निरीक्षण में सर्वप्रथम रानी मक्खी को पहचान कर उसकी अवस्था का जायजा लिया जाता है। यदि रानी बूढ़ी हो गई हो या चोटिल हो तो उसके स्थान पर नई रानी मक्खी प्रवेश कराई जाती है। नर मधुमक्खी का रंग काला होता है, यह केवल प्रजनन के काम आती है इसलिए इनके निरिक्षण की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। चौखटों के मध्य भाग में पराग व मकरंद होता है।

मधुमक्खी पालन में किन–किन उपकरणों की आवश्यकता होती हैं
मधुमक्खी पालन के लिए लकड़ी का बॉक्स, बॉक्सफ्रेम, मुंह पर ढकने के लिए जालीदार कवर, दस्तानें, चाकू, शहद, रिमूविंग मशीन, शहद इकट्ठा करने के लिए ड्रम, मौमी छत्ता धुऑदान।

मधुमक्खी पालन के लिए उपयुक्त समय :
फूलों की उपलब्धता को देखते हुए मधुमक्खी पालन के लिए जनवरी से मार्च का समय सबसे उपयुक्त है, लेकिन नवंबर से फरवरी का समय तो इस व्यवसाय के लिए वरदान है।

मधुमक्खी पालन में रखी जाने वाली सावधानियां :
जहां मधुमक्खियां पाली जाएं, उसके आसपास की जमीन साफ–सुथरी होनी चाहिए। बड़े चींटे, मोमभक्षी कीड़े, छिपकली, चूहे, गिरगिट तथा भालू मधुमक्खियों के दुश्मन हैं, इनसे बचाव के पूरे इंतजाम होने चाहिए।

कीटनाशकों से बचाव के उपाय :
मधुमक्खियां दिन में अपना काम करना तभी आरम्भ करती हैं जब वातावरण का तापमान 10–15 डिग्री सैल्सियस हो।

- जब पौधे की जाति में मधुरस और पराग उपलब्ध हों। इन बातों को ध्यान में रखते हुए फूल वाली फसलों पर विषैले रसायन तभी प्रयोग करें जब मधुमक्खियां उन पर काम न कर रहीं हों।

- जिस जगह कीटनाशक का छिड़काव करना हो, मौन गृहों को ढक देना चाहिए और प्रवेशद्वार को जाली से बन्द करें ताकि मौन गृहों में

हवा ठीक प्रकार से उपलब्ध हो। सर्दी के मौसम में मधुमक्खी के बक्सों को 1–2 दिन के लिए बन्द किया जा सकता है परन्तु गर्मी के मौसम में इनको बन्द करने के लिए काफी सावधानियां बरतनी चाहिएं।

- आमतौर पर कीटनाशक दवाइयां दानेदार, घुलनशील पाऊडर, इम्लसीफाएबल कन्सैन्ट्रेट (ईसी) और धूड़े के रूप में उपलब्ध होती हैं। इनमें धूड़ा सबसे अधिक हानिकारक होता है। उसके बाद ईसी व घुलनशील पाऊडर आते हैं। दानेदार दवाइयां मधुमक्खियों के लिए सबसे कम हानिकारक होती हैं।

कुछ कीटनाशकों का मधुमक्खियों पर विषैलेपन के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है।

1. सबसे ज्यादा विषैले

कार्बेरिल, कार्बोफ्यूरान, क्लोरपाईरीफॉस, फैनिट्रोथियान, मैलाथियान, फासफोमीडान, मिथोमिल इत्यादि। इस श्रेणी के कीटनाशकों का जहरीला असर 90 घण्टों (लगभग 4 रोज) से अधिक समय तक रहता है।

2. ज्याोदा विषैले

सभी सिस्टेमिक किस्म की कीटनाशक दवाइयां इस श्रेणी में आती हैं जो कि छिड़कने के बाद पौधों के अन्दर जल्दी सोख लिए जाते हैं।

3. सबसे कम विषैले (सुरक्षित)

कार्बेरिल (दानेदार), कार्बोफ्यूरान (दानेदार), मैलाथियान (दानेदार) इत्यादि। इसके अतिरिक्त फफूंदीनाशक व खरपतवारनाशक दवाएं व पौधों की बढ़ोत्तरी करने वाले हारमोन्स काफी हद तक सुरक्षित पाए गये हैं।

मधुमक्खियों के शत्रु एवं उनका प्रबन्ध

मोमी पतंगा, परभक्षी ततैया, चिड़िया, छिपकली, मेंढक, परजीवी अष्टपदियां, चींटियां, गिरगिट, इत्यादि मधुमक्खियों के प्रमुख शत्रु हैं तथा मधुमक्खी की मौनगृह में चल रही गतिविधियों में असुविधा का कारण बनते हैं।

1 मोमी पतंगा

तितलीनुमा इस कीट की सूण्डी स्लेटी रंग की होती है। इसकी सूण्डियां छत्तों पर सुरंग सी बनाते हुए उनमें सफेद तन्तुओं का जाला बुनती है। इस तरह पूरा छत्ता नष्ट हो जाता है। यह मौनगृहों तथा भण्डारित छत्तों का शत्रु है। इस शत्रु से बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए।

- कमजोर मौन वंशों को आपस में मिलायें अथवा इन्हें शक्तिशाली बनाएं। आवश्यकता से अधिक छत्तों को वंश से निकालकर भण्डारित करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो ऐसे छत्तों को सल्फर डालकर या ईथीलीन डायब्रोमाइड या पैराडाक्लोरो– बैनजीन से धूमन करें।
- मौनगृहों के सभी छिद्रों व दरारों को भली–भांति गोबर या कीचड़ से बन्द कर दें।
- मोमी पतंगों के अण्डों को नष्ट करें। छत्तों को सूर्य की गर्मी में रखें ताकि मोमी पतंगों की सूण्डियां नष्ट हो जाएं।

2 परभक्षी ततैया

ये युवा मधुमक्खियों, इनके अण्डों, शिशुओं व मधु भण्डार को अत्यधिक हानि पहुंचाते हैं। ये मौनद्वार के पास बैठकर मौनगृह से निकलती, बाहर से भोजन लेकर आती मधुमक्खियों को पकड़कर काटता है व मधु ग्रन्थियों को निकालकर खाता है। ये जुलाई–अगस्त में अत्यधिक हानि पहुंचाते हैं।

- मोनालय के चारों ओर दो किलोमीटर की दूरी तक इनके छत्तौं की खोज करकें, छत्तों को हटा देना चाहिए।
- मौनगृह का प्रवेशद्वार छोटा करना चाहिए।

3 चींटियां

ये मौनगृह से शहद एवं अण्डों की चोरी करती हैं। इनसे बचाव के लिए मौनगृह के पायों को पानी भरी प्यालियों में रखें तथा बक्सों के आस पास की जगह साफ–सुथरी हो तथा वहां पर कोई मीठा पदार्थ नहीं होना चाहिए। यदि मौनालय के समीप इनकी कॉलोनियां हों तो उन्हें नष्ट करें।

4 हरी चिड़िया

हरी चिड़िया मधुमक्खियों के प्रमुख शत्रुओं में से एक है। हरे तथा मटियाले रंग की चिड़िया उड़ती हुई मक्खियों को पकड़ कर उन्हें अपना भोजन बनाती है। इनका आक्रमण फूलों की कमी वाले महीनों में ज्यादा होता है। अगर आकाश में बादल छाये हुए हों तथा आसपास घने पेड़–पौधे हों तो यह समस्या और भी गम्भीर रूप धारण कर लेती है। इन्हें लगातार डराकर उड़ा देना चाहिए।

5 परजीवी अष्टपदी

कई प्रकार की अष्टपदियां मौनों पर उनका रक्त चूसकर निर्वाह करती हैं। आन्तरिक अष्टपदी मौनों में एकेरिना रोग का कारण है। ग्रसित मौन दूसरे मौन के सम्पर्क में आकर इस रोग को फैलाती है। इस परजीवी के प्रकोप से मौनवंश में क्षीणता आती है और ये धीरे–धीरे समाप्त हो जाते हैं। इसके नियन्त्रण के लिए सल्फर का धूमन लाभदायक होता है। 5 मिली फारमिक अम्ल को एक छोटी शीशी में डालकर उस पर रूई का ढक्कन लगा दें। यह शीशी आधार पटल पर रखकर रात को द्वार बन्द कर दें। हर दूसरे दिन शीशी को रसायन से पुनः बन्द कर दें। 15–20 दिन के लगातार धूमन से अष्टपदियां खत्म हो जाती हैं।

मधुमक्खियों की बीमारी एवं उनका निदान

एपिस मैलिफेरा मधुमक्खी में वंशों दो ब्रुड बीमारी (सैक ब्रुड एवं यूरोपियन फाउल ब्रुड) का प्रकोप दिखाई देने लगा है।

1 सैक ब्रुड

यह बीमारी मधुमक्खियों के शिशुओं में कोष्ठ बन्द होने से पहले आती है। इसमें लारवे (सूण्डी) के बाहर की चमड़ी मोटी हो जाती है और अन्दर के अंग पानी की तरह हो जाते हैं। यह एक विषाणु रोग है। इसका कोई नियन्त्रण नहीं है परन्तु यह रोग शक्तिशाली मधुमक्खी वंशों में कम पाया जाता है। इसके प्रकोप को कम करने के लिए कॉलोनी की साफ–सफाई रखना अति आवश्यक है।

2 यूरोपियन फाउल

यह एक बैक्टीरिया जनित रोग है। इसमें मधुमक्खी के लारवे अण्डे से निकलने के पश्चात् 1–3 दिन के अन्दर ग्रसित हो जाते हैं। शुरू में हल्का पीला, बाद में ब्राउन और अन्त में काले रंग की स्केल बन कर कोष्ठ की तली में पड़े दिखाई देते हैं। इसके नियन्त्रण के लिए टैरामाईसीन 250 मिगाम (आक्सीटैट्रासाईक्लीन 250 मि ग्राम750 मिली पानी एक चम्मच शहद या एक चम्मच चीनी को मिलाकर फव्वारे से प्रभावित ब्रुड पर छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 8–10 दिन के अन्तराल पर करें। ध्यान रहे यदि मधुमक्खी वंशों में अधिक शहद हो तो शहद निकालने के बाद दवाई का छिड़काव करें।

इफको नैनो डीएपी (तरल)

₹600/- | 500 मिली

बीज अंकुरण दर बढ़ाए

जड़ों का करे बेहतर विकास

खेती की लागत कम करे

रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग घटाए

जल, मृदा एवं वायु प्रदूषण कम करे

#IFFCONanoUrea

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

इफको नैनो यूरिया तरल

पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!

लागत कम करने में सहायक

मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए

पौधों के पोषण में सहयोगी

किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि

फसल उपज को बढ़ाए

पारंपरिक यूरिया से सस्ता

FOLLOW US:

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

किसान कॉल सेन्टर
0744-2662700

स्वामी प्रकाशक : डॉ. प्रताप सिंह, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. प्रताप सिंह, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, प्रधान संपादक डॉ.प्रताप सिंह